# पिआरे का पिआरा

भाई साहिब भाई वीर सिंह



# प्यारे का प्यारा

श्री गुरू नानक देव जी के अलौकिक व्यक्तित्व के चमत्कार की एक झलक

भाई साहिब भाई वीर सिंघ

भाई वीर सिंघ साहित्य सदन
नई दिल्ली

**Piarey ka Piara**

*Bhai Vir Singh*

ISBN # 978-93-80854-60-1



प्रथम संस्करण : 1969

नया संस्करण : जून, 2010

प्रकाशक :

भाई वीर सिंघ साहित्य सदन,

भाई वीर सिंघ मार्ग

नई दिल्ली–110 001

मुद्रक :

प्रिंटोग्राफ

2966/41, बीडन पुरा

करोल बाग, नई दिल्ली–110 005

मूल्य : 30/– रुपये

१ੴ सतिगुर प्रसादि।।

# प्यारे का प्यारा

यहां प्रसंग इस प्रकार लिखा गया है कि मानो एक पथिक अपने मुंह 'एक घटी घटना के' समाचार का चित्र अपने स्वप्न में देखता है और उस स्वप्न का वर्णन करता है।

: १ :

**मूसलाधार** वर्षा होने लगी। चारों ओर जंगल, न कोई गांव और न कोई बस्ती, वस्त्र भीग गये। थैला भी भीग गया। अब सर्दी भी आ गई। नीचे से पांव फिसलते थे और ऊपर से बूंदे पड़ती थीं। चारों ओर पवन शरीर की गर्मी उड़ा रही थी। हे वाहिगुरू! इस समय क्या हो? हृदय ने खूब प्रतीक्षा की! आंखों ने आपा फाड़कर भी चारों ओर दूर तक नज़र दौड़ाई, पर कोई ठिकाना नज़र न आया। ठिकाने के बिना ठहरना बेकार था और चलते जाना कदम-कदम पर कष्ट को बढ़ाये जा रहा था। हां, चलते रहने में ठहरने की अपेक्षा एक सुभीता था कि शरीर का ताप जितना उड़ता था उतना अन्दर से और उत्पन्न होता जाता था और कुछ जीवन के तार के चलते रहने की आशा हो सकती थी। परन्तु अब अंगों में थकान-सी प्रतीत होने लगी जो चलने को भी भारी किये जा रही थी।

इस प्रकार के कष्ट झेलते हुए एक बुर्जी-सी दिखाई दी। मन ने इच्छा की कि यह कोई ठोस बुर्जी न हो। ईश्वर करे कि यह कोई मन्दिर, समाधि अथवा मकबरा हो जिससे मुझे इस कष्ट

से छुटकारा मिले। आंखों ने निशाना बनाकर देखा, पांवों ने साहस बटोरा, मन ने मिन्नतें मानीं। वह बुर्ज आ गया, सौभाग्य था, वह ठोस बुर्ज न निकला, एक द्वार था, जिसमें कोई किवाड़ नहीं था, पर अन्दर खुले बैठने और घुटने जोड़कर लेटने के लिए ही जगह थी। पहले तो कदम रखते ही बीते समय के किसी भले पुरुष की भभूति का विश्राम स्थल होने के कारण उसके प्रति सत्कार के भाव ने रोका कि कदम संभालकर रख, पर फिर उसी भलाई के ख़्याल ने कहा कि जीते जी जिन्होंने सुख देकर भला कहलवाया क्या मरकर अपने द्वार पर आये अतिथि के दुःख को दूर करने से दूर हटना पसंद करेंगे? यह विचार करके मैं बढ़े हुए छज्जे के नीचे आकर खड़ा हो गया, जूता उतारा, वस्त्र उतार कर रख दिये, थैला खोला। बाहरी भाग भीग चुका था, पर अन्दर से एक चद्दर, कच्छा, कुरता और चादर कुछ सूखे से निकल आये। शरीर पोंछकर यह वस्त्र पहन लिये और उस छोटी-सी जगह के अन्दर जा डेरा लगाया। शरीर को कुछ गर्मी आ गई और सुख-सा हो गया। जब सर्दी तथा यात्रा की ओर से ध्यान हटा तो अपने सुख की ओर आ गया और सुख की ओर से सुख के कारण की ओर जा पड़ा। 'आह! अगर यह स्थान प्राप्त न होता तो न जाने मेरी क्या दशा होती? किन सौभाग्यवान हाथों ने इस स्थान का निर्माण किया होगा? न जाने मेरी ही रक्षा के लिए किसी ने किसी बीते समय में ये सामग्री इकट्ठी करवाई होगी?' अब विचार आया कि 'यह गुरूद्वारा भी नहीं, मन्दिर भी नहीं, समाधि भी नहीं दिखाई देती यदि है तो क्या है?' फिर मन ने कहा-पेड़ गिनने से क्या लाभ, आम खाने चाहिए। सुख प्राप्त हो गया है और साईं ने दिया है, धन्यवाद कर और जितना है उसके अनुसार पांव पसारकर विश्राम कर। जब लेट गया तो थोड़े ही समय में चूने वाली दीवारों तथा मेहराब वाली छत की सफेदी पर फिरती-फिरती दृष्टि भारी होकर वापिस लौटी और पुतलियों द्वारा नीचे उतरकर मुझे निंद्रा में मग्न कर गई।

जब मैं सो गया तब उस स्थान पर प्रकाश हो गया और उस प्रकाश में कुछ सूरत का भ्रम होने लगा। पर बाद में एक अच्छी सूरत गोरे रंगी की सुडौल स्त्री पर दृष्टि पड़ी, जिसके चेहरे पर सुख की चमक और शान्ति की दमक थी। नेत्र स्वच्छ, ऊंचे तथा प्यार से भरे हुए थे। मुझे कहने लगी – 'हे सुखों के प्यारे! शहीदों के स्थान पर बेअदबी के साथ क्यों पड़ा है? जिस स्वामी ने तुझे यह स्थान बताया था, उसका प्रतिदिन करने वाला कीर्तन भी नहीं किया और लगा है निद्रा करने? धन्यवाद के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं, मलिन है। आज के कष्ट तथा कष्ट में सुख की इच्छा तथा निराशा में सुख की प्राप्ति ने सुख भोगने की ओर इतना आकृष्ट कर लिया है कि तुझे रहरास (सायंकाल को जिस वाणी का सिख पाठ करते हैं) का पाठ भी भुला दिया और सोहिला (रात को सोते समय जिस वाणी का पाठ किया जाता है) भी याद न रहा। प्रेम के मार्ग में इस तरह, बेअदब हो जाना और फिर ईश्वरीय रहस्यों के परदे हटाने का संकल्प लेकर सो जाना ईश्वर के साथ प्रेम है कि अपनी बुद्धि को ज्ञान से भरने का लोभ है? 'फरीदा जा लबुत नेहु किआ तबु त कूड़ा नेहु'।

मैंने कहा – जी! सच है, मेरा प्रेम ऐसा ही है, प्रेम नहीं लोभ है, पर अब स्वामी को विरद की लज्जा है जिसके हम कहलाते हैं यदि कुछ आशा हो सकती है, तो इसी में। यह कहते ही मुझे पश्चात्ताप तथा वैराग्य ने आकृष्ट कर लिया और सचमुच अपने निकम्मे होने का चित्र आंखों के आगे आकर खड़ा हो गया। मैं इसी दशा में था कि आकाश से ध्वनि उठी और सायंकाल का कीर्तन होने लगा प्रतीत हुआ। कब किसी ने इतने सुरीले मधुर, प्यारे तथा रस-भरे स्वर में यह कीर्तन सुना था। कीर्तन की समाप्ति होकर उसी तरह के प्यारे स्वर में 'रहरास' की वाणी का पाठ तथा आरती का उच्चारण सुना। यह कीर्तन कौन कर रहा था और वह कहां पर बैठा था, यह दिखाई नहीं देता था, यों ही लगता था कि पवन को जिह्वा लग गई है।

झण-भर के पश्चात् वह प्रकाश वाली सूरत फिर दिखाई दी। मैंने कहा, क्या मैं पूछ सकता हूं कि इस उद्यान में कैसा मन्दिर है? तब उस भाग्यशालिनी ने कहा - भले पुरुष! यह बौद्ध मत के साधुओं के समय का एक मठ है; यहां पर उनके मत का एक तत्वज्ञ साधु बैठकर तप किया करता था; यह स्थान इसीलिए तंग है कि कहीं वह असावधानी से सो न जाये। शताब्दियों पर्यन्त इस छोटे से स्थान में कई महान व्यक्ति अपने असाध्यनों को सिद्ध करने के लिए निवास कर गये हैं। समय पलट गया, बौद्ध मत का प्रभाव कम हो गया। जिस देश ने उसे जन्म दिया था उसने उसे देश निकाला दे दिया और वह वृक्ष परदेशों मे जाकर प्रफुल्लित हुआ। इस तरह के उनके स्थान कुछ तो समय ने जर्जर कर दिये, कुछ मुसलमान आक्रमणकारियों ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिये। यह स्थान भी खंडहरों के रूप में पलट रहा था कि प्रकृति ने इसकी मुरम्मत करवाने में सहायता की और फिर से बनवा दिया। उसी के ढेर में कलश, गुम्बज़ की ईंटें तथा पत्थर मिल गये और वे गिरी हुई कुछ नई सामग्री लेकर फिर अपने स्थान पर खड़े हो गये और इसमें दोबारा जीवन भर गये। बस अब यह सारी बात जानकर तेरे मन का आश्चर्य शान्त हो गया है? अथवा मनुष्य के स्वभाव की भांति एक विजय के पश्चात् और झगड़े में पड़कर नई विजय के यत्न में लाने की भांति और हैरानी में जा पड़ी है?

मैंने कहा - सच तो यही है कि अब मेरा मन यह चाहता है कि यह भी जान लूं कि इस गिरे पड़े को किस भावना से किसी सांसारिक हाथ ने फिर उठाया और उसमें आपका क्या भाग है?

हंसकर, प्यार सहित उस परी से भी प्यारी सूरत ने कहा-हे पथिक! व्यक्ति जानने के लिए तो बहुत अधीर है, पर काश ! जितना कुछ जान लेता है उतनी कमाई भी तो करे। हां, प्रत्येक

बात को जानकर बुद्धि से ज्ञान के भण्डार भर लेता है पर उस ज्ञान द्वारा यह काम नहीं करता कि जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है, वही कुछ कर भी ले तो वही हो भी जाये। फिर अन्तस् जानने वाला जान ले कि अपने जानने तथा जानी हुई और जानने योग्य का मैं तो ज्ञाता हूं और यों पृथक हूं और पृथक होकर स्वतंत्र हूँ। और स्वतंत्र होने के लिए प्रसन्न हूं।

हे पथिक, हे अतिथि! तेरे सत्कार के लिये मैं तुझे व्यथा सुनाती हूं, तू इसे सुन और समझ। यह राम कथा लम्बी है और तनिक सी गहरी है, यदि तू इसे हैरानी से सुनेगा तो कुछ भी न जान सकेगा, पर यदि प्रीति-सहित ध्यान लगाकर सुनेगा तो समझेगा कि इस ठिकाने पर क्या-क्या घटना घटी थी और तू उससे क्या लाभ प्राप्त कर सकता है। इसके साथ मेरी व्यथा जुड़ी है अत: मैं अपना समाचार आरम्भ से सुनाती हूं :-

मैं राजसी घर में उत्पन्न हुई। मेरा पिता इस परगने का स्वामी था और अपनी शक्ति द्वारा इर्द-गिर्द के सारे परगने पर शासन किया करता था। आसपास के लोगों तथा अन्य कुलों के सरदारों में सदैव विजय प्राप्त करने के कारण 'राठ' कहलाता था। मेरा जन्म उसके घर में बहत लालसा के पश्चात् होने के कारण परिवार की ओर से मुझे प्यार किया जाता था। उस समय कुछ भय के कारण कुछ देखादेखी से और कुछ बड़ाई के कारण पर्दा प्रचलित हो गया था, पर पिता के भुजबल के कारण मैं निर्भय थी और अपनी पुरातन कुल-रीति के अनुसार स्वतंत्र थी। घोड़ों पर चढ़कर इन वनों में प्रसन्नता से घूमती थी। शिकार भी करती थी, निशाना लगाती और बरछे भी चलाती थी। बल्ले का खेल तथा गेंद-पट्टी सखियों के झुण्ड बनाकर खेला करती थी। अर्थात् संसार मेरे लिये सुख तथा आनन्द का एक अखाड़ा था। सवेरे से रात तक हंसना, खेलना, खाना, देन-देना, छेड़ना, आनन्द में मग्न दौड़ना, सुख से बैठना, आनन्द से सोना। कोई

ऐसा व्यक्ति नहीं था जो मेरे सुख में बुरा मनाता और यदि कोई बुरा मनाता भी तो मुंह से न बोल सकता। मैं मां की लाड़ली थी, इसलिये मैं पिता से अधिक प्यारी थी। माता-पिता की इकलौती बिटिया होने के नाते परगने-भर में मेरे जैसा कौन था। प्रजा में मैं बड़ी थी और मेरे बड़े मेरे प्यार के कारण मेरे सिर पर भय का अंकुश नहीं रख सकते थे। इन्हीं रंगों तथा मौजों में अठारह वर्ष व्यतीत हो गये। मुझे पुण्य तथा पाप का कोई ज्ञान न रहा और न ही मेरी आत्मा पर स्त्री तथा पुरुष का कोई गहरा अन्तर पड़ा। मेरे लिए संसार सुखों, खेलों का स्थान था और जो कुछ दिखाई देता था सब कुछ मेरे आराम के लिए बना दिखाई पड़ता था। मैं सारा दिन हंसती, प्रत्येक सखि के साथ चुहल करती और इस तरह फिरती थी, जिस तरह वन में मृग चौकड़ी भरते हैं। जब रात को मैं घर आई तो मां की गोद में जा बैठी और मैंने पुकारा; 'अम्मा खाना खिला।' वह कस-कसकर छाती के साथ लगाती और अनजान बालिकाओं की भांति मेरे मुंह में कौर दे-देकर मुझे खाना खिलाती थी। वहां से उठी, दूध का कटोरा पिया और जा पलंग पर छलांग लगाई, सिरहाने पर सिर रखा और सो गई। रात-भर कभी करवट नहीं ली, कभी कोई स्वप्न नहीं देखा, सूर्य को मैंने अपने बाद कभी नहीं जागने दिया। झिरियों में से धूप अन्दर आई तब मैं जाकर कहीं उठी, ज़ब उठी तो छलांग लगाकर उठी, झट वस्त्र पहने और बाहर घोड़े पर चढ़ी हुई सखियों के झुण्ड को साथ लिया और वनों की ओर उड़ गई। वनों में ही स्नान, वहीं पर खेल-कूद। दोपहर को खिलखिलकर हंसती हुई प्रसन्नता के पंखों पर उड़ती हुई घर को आई और उसी तरह खाती-पीती-हंसती हुई सो गई। सांयकाल को पिता के साथ प्यार करती हुई उनके सामने घोड़े पर चढ़कर फिर खेलों के मैदान में जा पहुंची। रात हुई तो उसी तरह कबूतर की भांति गुटकती हुई घर को लौट आई। चिनाब नदी हमारे से कुछ दुरी पर थी, पर मेरा बेड़ा वहां पर भी था। मेरे पिता को लोग

'पृथ्वीपति नदीपति' कहते थे, क्योंकि नदी में भी उसके आगे कोई खड़ा नहीं हो सकता था।

एक दिन मैं शिकार को गई। जब मैंने बहुत दूर देखा तो मुझसे एक चीते का भुलावा हुआ। मैंने सखियों से कहा देखें तो सही क्या है? कईयों ने कहा कि चीता है। कईयों ने कहा वैसे पत्थर पड़ा है। एक ने कहा 'पाढ़ा' नामक मृग है, एक ने कहा ज़रा आगे हो चलें और पहचान कर लें। पर मेरे शरीर में जो जीवन के चाव आनन्द तथा प्रसन्नताओं से भरे असह्य हिलोर उठते थे वे इन बातों की क्या चिन्ता करते थे, मैंने निशाना बांध कर वाण सीधा किया। जब मैं बाण छोड़ने लगी तो आज यह पहला दिन था कि मेरे जी में कुछ हुआ, जिसे मैं उस समय तो नहीं जानती थी, पर बाद में पता चला कि वह भय था। बाण निकल गया और ठीक निशाने पर जा लगा। वह जीव उठा नहीं, भागा नहीं, वहां पर ही दो चक्कर खाकर ढेर हो गया। तब हम भागकर वहां पर पहुंचीं तो हाय ईश्वर! मैंने क्या देखा कि वह वन-पशु नहीं था, वह तो एक मनुष्य था। मनुष्य भी वह था कि जिस जैसी सूरत मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। वह भला युवक था, अच्छे-से-अच्छे युवक तो हमारे दल में भी थे, पर वह कुछ और ही था और न जाने वह और क्या था। वह कुछ ऐसा अच्छा-अच्छा था कि मुझे यों लगा कि मैंने बाण तो इसे मारा है, पर मैं स्वयं बिंध गई हूं। कभी माता-पिता इतने अच्छे नहीं लगे थे, कभी खेल और शिकार भी इतने अच्छे नहीं लगे थे और न ही कभी सखियां इतनी मीठी लगी थीं, जितना कि अच्छा वह लगा। मेरे वश में कुछ न रहा, मैं जो अपने आपको सर्वोत्तम समझती थी, विवश होकर उसके आगे चारों खाने चित्त गिर पड़ी। हां मेरा न झुकने वाला सिर झुक गया, मेरे हाथ बंध गये और जो बात पहले कभी मुझ पर नहीं घटित हुई थी, आज आकर घटित हुई। मेरी आंखों में से जल के कण गिरने लगे।

उस मोहिनी मूर्ति के शरीर में बाण चुभ रहा था और उस बाण की जड़ में से रक्त की धारा बह रही थी। मैं रोई, कांपी, मैंने अपने हाथों से उस बाण को निकाला, उस छेद को, जिसे मेरे ही मूर्ख हाथों ने किया था, बन्द करने के लिये कसकर पकड़ा। सखियां मुझ में यह रंग देखकर–जिसे उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था, वे महल को भागीं। मैं अकेली रह गई। उस सूरत को इस दशा में देखकर मेरा कलेजा मेरे अधिकार में नहीं था। मुझे समझ नही आती थी, पर मेरे नैनों में से जल की धारा रुकती नहीं थी। मैं चाहती थी कि वह एक बार आंखें खोले, पर मेरा साहस नहीं बंध ता था कि मैं उसे हिलाऊं; भय लगता था कि न जाने निद्रा में हो और मेरे बुलाने पर कहीं जाग उठे और उसे फिर पीड़ा हो। उस समय मेरा जी चाहता था कि उसकी पीड़ा मुझसे हो जाये, उसका रक्त जो घाव के कारण बह रहा था, बन्द हो जाये और वह उठकर बैठ जाये और मेरी ओर देखकर कह दे :– हे युवती! तेरे अपराध का मैं तुझे यह दण्ड देता हूं, कि सारी आयु के लिये मैं तुझे अपनी दासी बनाऊंगा।' मैं सोचती थी कि यदि मेरे पिता ने न माना तो मैं इसके कण्ठ से लगकर उसकी छाती पर सिर रख कर रो-रोकर मनवा लूंगी और कहूंगी, 'हे पिता जी! मैं उसकी दासी बन गई हूं, मेरे अपराध ने मुझे इसके हाथों विक्रय कर दिया है, तुम यदि मुझे राज्य-सहित इसकी दासी बना दो तो भी मेरी भूल का बदला नहीं दिया जा सकता।' अम्मा तथा बापू को बता दूंगी कि इसकी बंदी में प्रसन्नता तथा स्वतन्त्रता समझूंगी। उस समय कलेजा उछल रहा था और मेरा एक हाथ उसके शरीर पर इस तरह फिरता था कि जिस तरह मुझे चकित हुई को मेरी दासियां पलोसा करती थीं। काफी समय यों व्यतीत हो गया। रक्त की धारा वाली नाड़ी मेरे हाथ ने दबाई हुई थी, मेरा दूसरा हाथ उसके पांवों को दबा रहा था कि फिर विवश ही मेरा सिर उन पैरों पर जा पड़ा और चिनाब नदी की भांति उछल रहे मेरे नैनों ने उन्हें भली-भांति धो दिया। इस समय उसने

लम्बा श्वांस लिया, मैंने सिर उठाकर देखा तो उसने नेत्र खोले थे। उसकी आंखों को जब मेरी आंखों ने देखा तो मेरे सारे शरीर में झन्नाहट पैदा हुई मैंने कब ऐसे नेत्र देखे थे? मैं चाहती थी कि कह दूं, "हे सर्वोच्च व्यक्ति! मैं अनजाने ही तुझे बींध बैठी हूं, पर मैं अपना दोष स्वयं मानती हूं। ये मेरा धनुष है और यह बाण है जिससे मैंने तुझे बींधा है, अब उठ और इसी से मेरी छाती को बींध दे, और यदि मेरे अपराध को क्षमा कर दे तो मेरे कान बींध कर बालियां डाल दे और मुझे दासी बनाकर अपने साथ ले चल। मैं सारी आयु के लिये तेरी दासी बन गई" पर हाय! मेरा गला रूक गया, मैं बोल न सकी, मेरी आंखों ने जो कुछ कहा सो कहा और उसकी आंखों ने जो कुछ पढ़ा सो पढ़ा। अभी मैंने जी भरकर आंखें देखी ही नहीं थीं की पलकें गिर पड़ीं और वे आंखें मुंद गईं! पैरों को दबाने वाला मेरा हाथ अब उसके चेहरे पर पहुंचा, मिट्टी झाड़ी, साफ किया, जैसे मेरी मां चाव के समय मेरे चेहरे पर हाथ फेरा करती थी कुछ उसी तरह और कुछ लज्जा सी में मैं चेहरे पर हाथ फेरती थी और चाहती थी कि यह एक बार फिर से आंखें खोल दे। मेरी आशा पूरी हो गई, नेत्र खुल गये और खुलकर मेरी आंखों में जम गये, मेरे नैन झपकी लेना भूल गये। वह स्वाद इस रंग में आया कि मैंने पहले कभी नहीं देखा था, मुझे एक प्रकार की बेसुधी हो गई कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् मुझे पता चला कि अधर खुलने लगे हैं और कहने लगे हैं कि "तू मेरी दासी है।" अधर खुले और कुछ कहने लगे, पर मैं न समझ सकी क्या कह रहे थे। हां अधर जो कुछ बोले उनका मुझे ध्यान हो गया, 'श्री वाहिगुरू।' इतनी ही बात थी जो उसने कही, पर मैं उस समय नहीं समझती थी कि यह क्या कहता है।

अब कुछ मेरे अधिक बल लगाने पर मेरे अधर भी खुले और मैंने कहा :- 'जी! क्या आज्ञा है?' पर इसके उत्तर से पूर्व

अधर और नैन फिर से मुंद गये और चेहरे के रंग में कुछ सफेदी-सी और आ गई।

इतने में मेरा पिता, माता तथा हकीम-वैद्य और कई दास आ गय गये। आज पहला दिन था कि मेरे चेहरे की ओर देखकर मेरे माता-पिता प्रसन्न नहीं हुए; उदास हो गए और मैं भी रोने लगी। मेरी मां ने भागकर मुझे गोदी में ले लिया, उसकी शीघ्रता के आकर्षण ने मेरा हाथ हटवा दिया और रुकी हुई रक्त की धारा फव्वारे की भांति मेरे चेहरे पर आ पड़ी। हाय! आज पहला दिन था कि मैंने आने-आपको मां की प्यारी कलाई से छुड़ाकर उसे धक्का दिया और शीघ्रता से उसकी रक्त वाली नाड़ी को पकड़ा, जिसमें कि मैं चाहती थी कि मेरा सारा रक्त चला जाये, और निकल चुके रक्त की कमी पूरी हो जाये। फिर मैं निस्शंक होकर इस तरह लेट जाऊं कि वह जैसे पड़ा था मेरे सिर को उठाकर अपनी गोदी में रखकर चेहरे से मिट्टी पोंछे।

वैद्य और हकीम अब भागकर आये और घाव को मेरे हाथों से लेने लगे, पर मेरा हाथ वहां से हटता नहीं था। पिता ने आकर शीघ्रता से मेरा हाथ हटाया और जोर से मुझे अपने अंगों में लेकर अपने कमरबन्द के साथ मेरे चेहरे से रक्त पोंछा और कहा, "राठ की बिटिया! यह क्या हो गया है? तेरा हृदय तो इतना कायर नहीं था?" पर मेरे पर क्या प्रभाव पड़ता था, करबद्ध होकर कहा, 'बापू जी! शीघ्रता से रक्त बन्द करवाइए, मैंने निर्दोष को मारा है।" मेरी आवाज़ में कुछ बहादुरी नहीं थी, कुछ वह था जिसे अनजाना मन कहते हैं, कुछ कम्पन-सा और कुछ थर्राहट सी थी, जिससे राठ बापू का हृदय भी घबरा गया। आज्ञा की, 'शीघ्रता से घाव को सी डालो।" वैद्य जी तथा हकीमजी ने फुर्ती दिखवाई, मोमियाई तथा अन्य औषधि दी, घाव को सीकर बांधा गया। अब मैंने कहा-"पिता जी घर में ले चलो; वहां पर सेवा करेंगे।" मेरे

कहने पर कौन इनकार कर सकता था? डोली में डालकर मैं उस सूरत को–जिस ऐसा और कोई भी अब मुझे अच्छा न लगता था–महलों की ओर ले चली। अब मुझसे घोड़े पर नहीं चढ़ा जाता था, जी चाहता था कि मैं डोले के साथ चलूं और उस मुखड़े को क्षण-भर के लिए नज़र से ओझल न होने दूं, पर आज बापू जी ने कुछ ज़ोर देकर मुझे घोड़े पर बैठाया। हम घर पहुंचे, मैंने अपने सोने वाले कमरे में उसका डेरा डलवाया।

मां मुझे एक ओर ले जाकर पूछने लगी–"बिटिया! यह कौन है? इसका तेरे से परिचय कब का है? तुझे इसके साथ इतना स्नेह क्यों हो आया है, हैं इतना प्रेम?"

मैंने रो-रोकर कहा-अम्मां! आज से पहिले मैंने इसे कभी नहीं देखा। बाण मारते समय मुझे पता नहीं था कि यहाँ पर सबसे अच्छा लगने वाला मनुष्य बैठा है। मैंने तो चीता समझकर बाण मारा था और मैं प्रसन्न थी कि इसका चर्म बापू के रथ के नीचे बिछाऊंगी। पर हे अम्मां! बाण चलाते समय मेरे जी को अवश्य ही कुछ हुआ था, न जाने वह क्या था! और जो तुम मुझे 'प्रेम' कहतीं हो वह क्या होता है? मुझे तो इसका पता ही नहीं।

मां ने हंसकर कहा-जो हम तेरे साथ करते हैं। मैंने कहा अम्मां! वह तो लाड़-प्यार है। मैं जब इससे परिचित हीं नहीं थी, तब मैं इसे लाड़-प्यार कैसे कर सकती थी? मेरे इस भोलेपन को सुनकर मां हंस पड़ी और कहने लगी, "जो व्यवहार तू इसके साथ कर रही है, यह प्रेम है।" मैंने कहा, "अम्मां! मैंने तो इसके साथ अब भी लाड़-प्यार नहीं किया, वह तो बोलता भी नहीं। नाड़ी दबाई है, पांव दबायें हैं और चेहरे पर से गर्द झाड़ा है, लाड़ तो कोई किया नहीं, वह तो बोलता भी नहीं। अम्मां जी! यह मुझे बहुत ही अच्छा लगता है, कोई और इस जैसा अच्छा कभी भी नहीं लगा।" अंम्मां कहने लगी–"क्या मुझसे और तेरे बापू से भी अच्छा लगाता है?" मैंने उत्तर दिया, "हां अम्मां,

तुम्हारे से बहुत ही अच्छा लगता है। तुमने नहीं देखा किस तरह का अच्छा है! भला तुमने कभी पहले इस जैसा व्यक्ति देखा है कि नहीं सब की अपेक्षा और सा? मां जी! मैंने बहुत ही पाप किया है जो सबसे अच्छे मनुष्य को इतनी पीड़ा दी है। यही है न पाप, जिस बात को पण्डित जी एक दिन पाप कह रहे थे और मैं क्रोधित होकर उठकर चली गई थी और बापू जी को कहा था कि यह मुझे कायरों की-सी बातें सुनाता है। उसका अब मुझे स्मरण आ रहा है कि वह पाप यही बात होगी, जो आज मेरे से हुई है। अम्मां! यदि यह मुझे बाण मारे तो मैं छाती आगे कर दूंगी और यदि यह मुझे दासी बनाकर मुझ से अपनी सेवा करवाये तो भी मैं करूंगी। अच्छी अम्मां! मुझे रोकना मत।"

यह सुनकर अम्मां पहले तो मुस्कराई, पर फिर रोने लग पड़ी। मैंने कभी भी मां की आंखों में जल नहीं देखा था। नौकरों को जब पीटा जाता था तो वे लोग रोते थे। मैं जानती कि हम राजा लोग हैं, हमारे नेत्रों में इन जैसा कच्चा जल है ही नहीं, पर आज तो मैं स्वयं रोई थी, मैं सोचती थी कि मैंने पाप किया है, और पण्डित जी ने बताया था कि पाप नीच कर देता है- मैं तो नीची हुई हूं, पर अम्मां ने कोई पाप नहीं किया था वह क्यों रोई? इतने में अम्मां कहने लगी, 'बिटिया! क्या कहूं? तेरे बापू के हाथों से युद्ध में अनेकों व्यक्ति मरे। न जाने राज्याधिकार तेरे हाथों में आये। चारों ओर शत्रु राय लोगों का निवास है, यदि तु तगड़ी न हुई और लड़कर विजय प्राप्त करके राठ न बनी तो राज्य को कैसे सम्भालेगी? बुरा तो हुआ, पर क्या हुआ, एक कंगला मर गया तो मर गया सही!" यह सुनकर मेरी चीखें निकल गईं। मैं अनजान बच्चे की भांति रोई। मां ने कण्ठ से लगाकर प्यार किया, पर मेरा रोना रुकता न था, मैं कहती : "अम्मां तेरी आंखों को क्या हो गया है? वह सबसे अच्छा मनुष्य है इसीलिए तो मुझे अच्छा लगता है।

उसे तू कंगला' कहती है? 'यदि वह मर गया तो कोई बात नहीं', अम्मां! यदि वह मर गया तो यही बाण जिससे मैंने सबसे ऊंचे को मारा है। मैं अपनी छाती में चुभो लूंगी और न तेरी गोद में खेलूंगी और न ही बापू जी से अंगमिलन करूंगी। अम्मां! तूझे क्या हो गया है? जो वस्तुऐं मुझे अच्छी लगती थीं, तू उन्हे चाव से लेती और कहती थी कि वे बहुत सुन्दर हैं। आज तू मूझे सबसे अच्छा लगने वाले को 'कंगला मर गया तो क्या हुआ?' कहती है। वैद्य को तो बुला, आकर देखे कि मेरी आंखों में जाला तो नहीं पड़ गया अथवा तेरी आंखों में तो नहीं पड़ गया? हाय! अब हे अम्मां? मेरे कलेजे पर हाथ रख, यहां पर कुछ उछलता है । यह क्या है? मेरा जी उस उछाल से घबराता है। यदि तू कहे, 'वह अच्छा है और तुझे भी अच्छा लगता है और हम उसकी सेवा करेंगे', तब तो यह उछाल कम होती है और मन लगता है अन्यथा छाती में उछाल होकर मेरे सिर को चढ़ रही है और नैन थामे नहीं जाते। आह, देख मेरे अश्रु थमते नहीं अंजुलि कर और भरकर देख। बता अम्मां! अब मैं क्या करूं?

मेरी यह दशा देखकर अम्मां कहने लगी-"रो मत, वह चंगा तो है, चंगा लगता भी है, तुझे जो चंगा लगे वह मुझे कभी भी बुरा नहीं लगा, पर कंगला तो मैंने इसलिए कहा था कि वह कोई सज्जन पुरुष थोड़े ही हैं। कोई मजदूर काम-धन्धा करने वाला होगा, मर गया, तू उसका दुःख मत कर।" मैंने कहा, "अम्मां! कपड़े खूब सफेद नहीं, पर माथा तो किसी सज्जन पुरुष का इतना विशाल, गोल तथा चमकने वाला नहीं होता और यदि बापू जी उसे धरती तथा पशु दे दें तो वस्त्र भी अपने आप सफेद हो जायेंगे। पर अच्छा मां जी! जिस समय उसने नेत्र खोले और तुमने देखा, अब अपने-आप कहोगी कि यह तो लाहौर का कोई सेनापति है।"

यह सुन कर मां ने कहा– "अब तू मुझे बता कि तू किस बात पर प्रसन्न होगी?" मैंने कहा– "वही मेरे पास रहे, वैद्य तथा हकीम बाहर उपस्थित रहें, मैं सेवा करूं, वह औषधि करें, यदि एक बार स्वस्थ हो जाये तो मैं कहूं, "हे सर्वोच्च मनुष्य! मैंने अपराध किया है मुझे जो तेरी इच्छा हो दण्ड दे।"

मां के मन में न जाने क्या आया : कहने लगी– "दासियां, सेविकायें काफी हैं, पर यदि तेरा मन स्वयं सेवा करने को चाहता है तो अच्छा, तू सेवा करना, वैद्य तथा हकीम यहीं पर रहने लगेंगे।" सो वैद्य-हक़ीम आ गये, मैं सेवा करने लगी। जिस तरह मेरी सेविकायें मेरी सेवा किया करती थीं, उसी तरह मेरा जी उसकी सेवा में लग गया। मेरा निजी पलंग खूब नर्म था, मैंने उसके ऊपर उसे सुलाया, सारा दिन पास बैठकर पंखा झलती रहती और उसके चेहरे की ओर देखती रहती और इसी बात की प्रतीक्षा में रहती कि कब नेत्र खुलते हैं और मैं देखूं, कब अधर खुलें और वह 'श्री वाहिगुरू' फिर से सुनूं।

: २ :

तीसरे दिन आधी रात के समय उसके अधर खुले और निःश्वास की आवाज़ आई, इसके पश्चात् आवाज आई, "धन्य ना...न...क" और उसके नेत्र खुले। नेत्र क्या खुले मेरे लिए बन्दीगृह से प्रसन्नता मुक्त हो गई। मैं खुले नैन देखकर बहुत प्रसन्न हुई और फिर कहा–"हे चंगे! सबसे अच्छे? मैं अपराधिनी हूं"। उन नेत्रों ने मेरी ओर देखा और फिर मुंद गये, पर जिह्वा ने पूछा, "मैं कहां पर हूं?" तब मैंने उसके कानों के पास मुंह लगाकर सारी व्यथा सुनाई और अपनी बातें भी कहीं पर फिर न तो नैन ही खुले और न ही अधर। कोई चौथे दिन सवेरे के समय फिर आवाज़ आई:–

मंदा मूलि न कीजई दे लंमी नदरि निहालीऐ।।
जिऊ साहिब नालि न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ।।
किछु लाहे उपरि घालीऐ।।२१।।

पर मैंने उस समय सारी बात न समझी, हां इतना समझी की कहता है मेरे साथ तूने बुरा किया है, यह नहीं करना चाहिए था, बाण चलाते समय भली भांति देख तो लेना था, मैं प्रतीक्षा कर रही थी कि अब कहेगा कि तुझे मैंने कैद किया, इस पाप के बदले में । पर फिर नयन खुल गये और मेरी ओर देखा, फिर अधर खुले और कहने लगे, "तुमने बहुत सेवा की है, बाण तो मेरे पापों ने मुझे मारा है, तुम बहुत अच्छी हो, जिसने मेरी सेवा की है, प्रसन्न रहो"। यह कहकर वह सो गया। उसे सोया देखकर मैंने मां के पास जाकर उसे अंगों में लेकर कहा, "देख ले मां! वह मनुष्य कितना अच्छा है? कहता है - बाण तूने नहीं मारा मेरे पापों ने मारा है और तू अच्छी है जो सेवा कर रही है। देख मां! जो पापी को अच्छा कह रहा है; अम्मां! वह कितना अच्छा हुआ? मैंने तुझे कहा नहीं था कि वह बापू जी से ज्यादा अच्छा लगता है, भला बापू जी कभी पापी को अच्छा कहेंगे, वे तो पापियों को फांसी लगा देते हैं और यह कहता है- "तू अच्छी है"। मां हंस पड़ी और कहने लगी, "जा आज से जाकर खूंडी का खेल खेल ले।" मैंने कहा, "मां! जी नहीं करता, पास बैठे रहने के बिना और किसी बात को जी नहीं चाहता। अब जब कि तुम्हारे पास बैठी हूं तो जी यही कर रहा है कि कौन सा समय हो मैं फिर से उसके पास जाकर बैठूं।"

इस तरह करते कुछ दिन व्यतीत हुए, 'चंगे' जी का जी स्वस्थ होता दिखाई पड़ने लगा। एक दिन रात को नैन खोले और मुझे पास बुलाकर कहने लगे :-

'देख तूने एक परदेशी की सेवा की है और यह सेवा भी राजा की बेटी होकर की है, मैं गरीब हूं, मेरे पास तुझे देने के

लिए क्या है? पर एक बात तुझे बताता हूं, जो तुझे सुख देगी, वह बात ध्यान देकर समझ ले, वह बात यह है कि, "तू यह शरीर नहीं है, तू आत्मा है" – मैंने पूछा, "आत्मा क्या होती है?" तब उनका मुंह बन्द हो गया दूसरी रात को फिर मुंह खुला तब कहने लगे, "मैं कहता हूं कि तू आत्मा है, तू शरीर से अलग है, तू शरीर से ऊंची है, यदि शरीर न रहे तो तुम तब भी रहेगी। यदि तू विशुद्ध शरीर हो तो निःसन्देह हंस, खेल, खा पी लिया कर पर तू आत्मा है अपने-आपकी पहचान किया कर, दूसरों में अपने जैसी आत्मा देखकर ! धन तथा शरीर तो परदे हैं जो अपने-आपको आत्मा देखने ही नहीं देते इन परदों को फाड़कर आत्मा को देखा कर। तू बहुत ऊंची है, पर अपने लिए जैसा सुख प्राप्त करती है, वैसा दूसरों को सुख भी दिया कर।"

मैं घबरा गई, मेरे आगे अन्धकार-सा छा गया, मैं चकित होकर हक्की-बक्की रह गई । मैंने कहा – "मैं नहीं जानती तुमने क्या कहा? 'मैं आत्मा हूं? मुझे शरीर के मर जाने पर नहीं मरना है मुझे सुख देना है ? 'हाय! क्या यह सच है? यदि सच है तो और मत कह, मेरा जी बैठता है। मैं यह शरीर ही रहूं और तेरे शरीर की सेवा करूं, सेवा में मर जाऊं और फिर न होऊं।" बस जी और मैं कुछ भी न होऊं। वे कहने लगे – "हे सरले! तू आत्मा है, तू पृथ्वी पर चलने वाली, तू पक्षियों की भांति नहीं! किसी और आकाश में उड़ने वाली है। तू मिट्टी मांस हड्डी नहीं तू प्रकाश की भांति ज्योतिस्वरूप है, केवल रोने-धोने, खेलने तथा हंसने वाली नहीं, पर सदैव सुखी सदैव आनन्द है।"

मैंने डरकर आंखें मूंद लीं और कहा, "हे सबसे चंगे पुरुष! मुझे कुछ होता जा रहा है, मुझे वह कुछ होता जा रहा है, जो बापू जी कहते हैं कि कायरों को होता है और मत बता। जब मैं तेरी बातों के पीछे-पीछे जाती हूं तब मैं इतनी सिकुड़ती तथा फैलती हूं कि खो-सी जाती हूं। मत कह कि "मैं आत्मा हूं।"

फिर वह कहने लगा– 'हे अच्छी! सेवा कर सकने वाली! सुन, तू आत्मा है। तुझ में मोह नहीं है, तुझ में लोभ नहीं है, तू मांगने वाली नहीं, तू दाता है, तू सबसे एक जैसा प्यार करने वाली है। हां तू है, तू उच्च है, अपने–आपकी पहचान कर।" अब मुझे वह लगा, जिसे 'भय' के नाम से सुना करती थी। हां मैं सचमुच डर गई। मैं सहमकर बैठ गई। मैं चाहती थी कि कानों को बन्द कर लूं कि कहीं और सुनकर बावली न हो जाऊं। पर सबसे अच्छे मनुष्य की अच्छी आवाज़ के आगे कान कैसे बन्द करूं? मैंने फिर साहस बटोरकर कहा – "बस कर, हे ऊंचे मनुष्य! और मत कह, मेरी बुरी दशा हो गई है। मैं यह आत्मा न होऊं। मेरी इस भय से रक्षा कर, जो मुझे इस विचार में जाने से लगता है।" पर उसने फिर कहा 'तू आत्मा है, हां, जैसे तू वाण नहीं, धनुष नहीं पर तू बाण चलाने वाली है। तू भोजन नहीं, तू भोजन करने वाली है। तू देह नहीं, देह को चलाने वाली है। तू मन नहीं पर मन को हांकने वाली है। तू आप कहती है कि नहीं, "मेरा मन आज प्रसन्न है" "आज व्याकुल है" सो तू मन नहीं, पर मन की स्वामिनी है, हां तू चरखा नहीं, पर चरखा कातने वाली है। हे सुन्दरी! तू सुन्दर नहीं पर सुन्दरता तेरे से निकलती है। तू धूप नहीं पर सूर्य है। तू चांदनी नहीं, पर चन्द्र है, हे अच्छी! वैसे ही तू देह नहीं, पर आत्मा है"।

यह सब कुछ मैंने टक बांधकर, मन को एकाग्र करके और विवश होकर सुना, पर सुनते–सुनते अब की बार चक्कर आ गया। आंखें बन्द हो गईं, मानो पृथ्वी और आकाश उलट गये। मैं बेहोश होकर उसके चरणों पर गिर पड़ी। मुझे पता नहीं रहा कि मैं हूं भी कि नहीं। जब मैं काफी समय के पश्चात् उठी तो मैं भय से कांप रही थी। क्या मेरे सिर पर इतना पर्वत टूटेगा कि मुझे आत्मा होना है, जैसे यह कहता है? यह तो बड़ा कठिन है, पर यह सबसे अच्छा मनुष्य जो कहता है, वह अच्छा ही होगा। मैं तो

बावली होती हूं, डरती हूं कि यदि यह कुछ मैं हूं तो मैं तो बहुत दुर्बल हूं, कौन इस भार को सहन करेगा कि मैं आत्मा हूं? इस उच्च पर्वत की शिखा की ओर देखने से मेरी दृष्टि फटती है जब मैं यह सुनती हूं तो अन्दर से फैली हूं, फिर मैं घबरा जाती हूं।

मैं अब तक हंसती-खेलती, लाड़ों में पली प्रसन्न-प्रसन्न रहती थी। क्या यह मेरे चाव तथा प्रसन्नताएं अपरिचित हैं? हाय! मेरा कलेजा फिर टूट गया। वनों के मृग, ठण्डी छांह, बहते हुए जल सखियों के झुण्ड में मुश्की रंग की घोड़ी पर सवार हुई, मेरे हाथ में धनुष बाण, ममता की मारी मां प्रतीक्षा करती हुई और बापू मेरा मार्ग देखने वाला, शीश झुकाने वाली प्रजा, क्या यह सब कुछ अच्छा मेरे शरीर के लिए है? अपरिचित है? क्यों जो यह कहता है कि तू शरीर नहीं, हां यदि मैं शरीर नहीं हूं तो यह शरीर को अच्छे लगने वाले सभी आडम्बर भी मेरे न हुए। हाय! हाय! मैं अकेली हूं, यदि शरीर मेरा नहीं तो मां तथा बापू भी मेरे नहीं, और यदि वे नहीं मेरे तो सभी सुख और प्रसन्नताएं, जिन्हें वे देते हैं, सम्बन्धी तथा सखियां मेरी न हुईं। हाय! मैं आत्मा हूं तो अकेली हूं। इस समय मेरी आंखों के आगे अकेलापन रूप धारण करके आ गया। तब मैं प्रसन्नताओं के पालने में झूलने वाली सरल तथा बिलकुल अनजान क्या जानती थी कि कुछ और बात भी है? चंगे पुरुष की बात सोचते-सोचते मेरे चारों ओर 'अकेलापन' छा गया। इस अकेलेपन ने मेरे ऊपर ऐसा भय डाला कि मुझे कुछ भी दिखाई न पड़े; कलेजा कांपे, रोम पुलकित हो गये, मैं सिसकियां भरकर रोने लगी और कहने लगी-हाय मैं किसी तरह आत्मा न हूं। ज्यों-ज्यों मैं सहम खाती और डरती त्यों-त्यों वह अकेलापन बढ़ता जाता और मैं टूटती जाती। काफी समय के पश्चात् मेरी आंखें खुलीं। अब मैंने उठने की इच्छा की, पर अब उठे कौन? जिन मेरी टांगों ने सारा-सारा दिन वनों के चक्कर काटे थे, वे अब उठना भूल गईं। जिन मेरी बाहों ने सिंहों

का वध किया था, अब, पृथ्वी पर टेक रखकर आश्रय देना भूल गई।

फिर मुझे ख्याल आया कि मैंने निर्दोष तथा सबसे अच्छे मनुष्य को मारा है, मैंने यह पाप किया है। मेरे पाप का दण्ड मुझे इसने दिया है जो इसने मुझे अकेला कर दिया है। हाय! अब मैं सदैव दुख भोगूंगी। मैं सदैव अपने-आपको अकेलेपन में देखूंगी, मेरा कोई नहीं, मैं अकेली हूं? हाय! मैं अब से नित्य रोया करूंगी और अकेली ही दिन काटा करूंगी? मेरे दिन कैसे व्यतीत हुआ करेंगे? मेरी रात कैसे व्यतीत हुआ करेगी। जब शरीर मेरा नहीं तब दूसरों के सुख मैं कैसे प्राप्त करूंगी? साथ वह यह भी कहता है, 'तू सुख दिया कर, सुख प्राप्त मत किया कर' कितनी असम्भव बात कही है? जब शरीर भी मेरा नहीं तो मैं किसी को दिया क्या करूं? यदि किसी के पास कुछ हो तब ही तो दूसरे को बांट सकता है जब मेरे पास है ही कुछ नहीं तो बांटकर क्या दूंगी? अब फिर मेरी आंखों के सामने एक अन्धकार-सा उठा और सब कुछ लुप्त हो गया; मैं अकेली अंध कार में रह गई, इस समय मैं इतना डरी कि मेरी चीख से सारा घर गूंज उठा । मां भागकर आई और मुझे गोदी में ले लिया। मेरा माथा चूमने लगी, आंखें पोंछी, दबाया, प्यार दिया और बलि-बलि जाने लगी, पर मुझे होश न आया। मेरे धड़कते हुए कलेजे की आवाज़ मेरी मां के कानों में पहुंची। मां ने मेरा मुंह धोया, मेरे मुंह में पानी का एक घूंट डाला और पूछने लगी, क्या हुआ है? जब मैंने आंखें खोलीं तो मैंने कहा! "अम्मां! मुझे छोड़ दे, तू मेरी नहीं, और मैंने तेरे दिये हुए सुखों को लेना भी नहीं है।" अम्मां बलिहारी होकर कहने लगी- "क्यों बिटिया" तब मैंने कहा, "अम्मां! मैं शरीर नहीं, मैं-मैं आ...त्मा...हूं और इसलिए अकेली हूं और अकेली को मुझे भय लगता है, वह भय मुझे खाये जा रहा है और खा जायेगा, जा मां तू जाकर सो जा मुझे चंगे मनुष्य ने मेरे अपराध का दण्ड दिया है, अब मुझे

अकेलापन खाये जा रहा है, तू जा, मैं उसे कहती हूं कि बाण लेकर मुझे चुभो दे, मैं इस तरह मरने के लिए तैयार हूं, पर यह आत्मा बनकर अकेलेपन के हाथों इस तरह का मरना मुझे बड़ी पीड़ा देता है, जो पीड़ा कि असह्य है।"

यह सुनकर मां को क्रोध चढ़ा, कहने लगी–"अभी इस बावले को कब्रिस्तान भेजकर जीवित ही गड़वा देती हूं जो मेरी लाडली इकलौती बेटी को डराता है और निर्भय सिंह जैसी बिटिया का कलेजा निकाल रहा है, इस चाण्डाल बाबा के अभी टुकड़े करवाती हूं"। यह सुनकर मेरे प्राण निकलने लगे। मैंने दोषी सेविका की भांति मां के चरण पकड़ लिये और कहा–"अम्मां! और पाप मत करना मैंने पाप किया है, उसका बदला देना है। यही बात पण्डित जी कहा करते थे कि नहीं? फिर तुम उस निर्दोष को क्यों और दुख देती हो, जिसे मैंने पहले दुख दिया है और अब पाप का फल मुझे लगा है कि मैं अकेली हो गई हूं। मैं तो फल भुगतूंगी पर तू जा विश्राम कर, जा अम्मां तू जा।" मां जाती नहीं थी, वह दांत पीस रही थी, मैं उसे भेजना चाहती थी; अन्त में मैंने कहा, "यदि तुमने इस चंगे मनुष्य को कुछ कहा तो मैं अपने-आप अपने कलेजे में बाण चुभो लूंगी।" तब जाकर मां टली, पर क्रोधित होकर गई। अब मैं उसी मैं अकेलेपन के भय में बैठी थी, "तू आत्मा है" यह आवाज़ मेरे कानों में गूंज रही थी कि एकाएक याद आया कि चंगे मनुष्य ने बातें भी तो की थीं की तू उच्च है। मैं उच्च हूं, पर्वत ही शिखा ऊंची होती है वह भी अकेली और उजाड़ होती है बादल ऊंचे होते हैं, पर सुनसान हैं, चन्द्र ऊंचा है, पर वह भी अकेला है, सूर्य ऊंचा है, वह भी अकेला है; यदि मैं ऊंची हुई तो भी अकेली ही हुई न, हाय! मैं क्या करूं? अकेलापन खाये जाता है।

'तू आत्मा है, तेरे में मोह नहीं,' तभी तो आज मैंने मां को नाराज कर लिया है। चंगे मनुष्य ने कहा था, 'तू निरिच्छ है,

निरिच्छ हो जा', पर मुझे भोजन की तो आवश्यकता है, इससे निरिच्छ कैसे होऊं? और यदि मेरा कोई नहीं, फिर मैं भोजन कहां से करूंगी। हाय! कोई आकर मेरी सहायता करे। मैं किसी तरह आत्मा न हो पाऊं? मैं सुख दिया करूंगी, सुख लिया नहीं करूंगी, भोजन आप बनाऊंगी, जल आप भरूंगी, चारपाई आप बिछाऊंगी, वस्त्र आप धोया करूंगी, पर यह भी कैसे करूंगी? मैं ज़ब देही ही नहीं, तो देह के काम कैसे करूंगी? आत्मा हूं, सबसे पृथक हूं, शरीर से पृथक होकर अब मैं इसी दशा में अकेली रहा करूंगी और अकेलापन मुझे खाया करेगा और मैं सूखकर मर जाऊंगी।

मैं इन भ्रमों में बह रही थी कि चंगे मनुष्य के फिर नयन खुले और देखकर मुस्कराये। अधर मुस्कराये और नयन भरकर मेरी ओर देखा, तब मेरे में प्राण आये, उस समय मेरा अकेलापन भाग गया और मुझे प्रसन्नता आ गई। मैंने पास जाकर हाथ बांधे और फिर उसने कहा, "तू आत्मा है, पर अकेलापन तुझे नहीं खा सकता।" मैंने कहा, "हे चंगे मनुष्य! कह दे मैं आत्मा नहीं, यह दण्ड मेरे लिये असह्य है, मुझे कैद कर ले और मुझे कह दे तू मेरी दासी है, सदैव मेरे साथ रह और मेरी सेवा कर।" मैं सेवा करूंगी, या बाण लेकर मेरी छाती में चुभो दे, मैं उसे चुभवा लूंगी और सहर्ष मरूंगी, पर मुझे आत्मा मत कह।" उसने फिर नैन मूंद लिये, काफी समय के पश्चात् खोले और कहा, "तू अकेली नहीं है, तेरे साथ निरंकार है।" मैंने रो कर कहा, "तू मेरे पास रह, मुझे और किसी की आवश्यकता नहीं, सबसे अच्छा तू है, तेरे से अच्छा कोई नहीं। मुझे 'मैं आत्मा हूं' और 'मेरे साथ निरंकार है' की आवश्यकता नहीं।" उसने कहा, "मैं आत्मा हूं, परमात्मा मेरे साथ है। तू आत्मा है, परमात्मा तेरे साथ है।" मैं अब और सहम गई।

उसने फिर कहा, "परमात्मा सदैव तेरे साथ है, तू उसकी ओर देखती नहीं, वह तुझे देखता है। तू सो जाती है, वह जागता

है, तू जो करती है वह उसे देखता है, जो सोचती है वह जानता है। तू उसे नहीं देखती और न ही जानती है।" आह! अब मेरे पर और भय छाया। मैंने मन से कहा, मेरे साथ कोई छिपकर रहता है जो मेरे सारे कामों को देखता है, दीखता नहीं, पर देखता है। सो फिर साथ तो हुआ, पर न हुए जैसा हुआ। हाय! मैं क्यों आत्मा न हूं? यदि वह देखता, जानता और सुनता है; तो मैं प्रत्येक काम करते समय झिझका करूंगी, बोलते समय सोचा करूंगी, और सोचते समय क्या किया करूंगी? डूब जाया करूंगी?

फिर मैंने उसे कहा, हे चंगे मनष्य । मैंने पाप किया है, मुझे दण्ड दे, पर इतना कठोर दण्ड मत दे।' पर उसके नेत्र मुंदे हुए थे जो फिर सारा दिन न खुले और मैं डोलती, डरती, सोचती डूबती, तैरती पर उसके पास ही बैठी रही। पिताजी आये, मैं भागकर उनके कण्ठ से चिपट गई, वे भी कुछ उदास-से होकर आये। मेरा चेहरा देखकर और उदास हो गये मुझे गले लगाने लगे तो मैं तनिक-सी झिझकी, पर उन्होंने जबर्दस्ती मेरा सिर छाती के साथ लगाकर दबाया और सिर पर हाथ फेरकर मुझे प्यार दिया। जिस समय उनका हाथ मेरे सिर पर प्यार सहित छुआ तो मेरी सिसकी निकल गई और गर्म-गर्म अश्रु उनकी छाती पर बहने लगे। यह देखकर वह राठ, राठों में भी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका राठ पिता, निःश्वास भरकर- कहने लगा, "बिटिया! होश कर, तेरा दुख अभी दूर कर दूं, पर तेरा प्यार ही कुछ नहीं करने देता।" मैंने कुछ न कहा, मुझे एक शीतलता-सी मिल रही थी, पिता के प्यार में एक सुख मिल रहा था, मैं प्रसन्न हो रही थी, ध्यान में आता था कि सुख देना है, लेना नहीं। पर मैं इतनी व्याकुल हो चुकी थी कि अब मेरे से पिता के लाड़ तथा दिलासे के सुख का त्याग नहीं किया जाता था। मुझे अब ढाढस बंध गई कि मुझे खाने वाले अकेलेपन से रक्षा करने वाले बापू जी आ गये हैं। बापू जी ने मुझे फिर समझाया। जब मैंने उन्हे अपना दुख बताया, तो वे हंसने लगे और कहने लगा : बिटिया

तेरा भोलापन ही तेरा शत्रु हो रहा है, मैंने तेरा बड़ी सादगी, सीधे तथा भोलेपन में पालन किया है, तुझे संसार तथा धर्म का कोई ज्ञान नहीं। बिटिया! होश कर और समझ जो कुछ तुझे उसने कहा है, उससे लगता है कि वह साधु है और उसने तेरे से बदला नहीं लिया। जो बात वह अच्छी समझता था, उसने वही तुझे कही है। तू बड़ी भोली है, उस समय जब एक बार पण्डित ने पाप-पुण्य की बात कही थी तो तूने मन से लगा ली थी और उठकर भाग गई थी कि कहीं कोई और बात न कह दे जिससे तेरा जी छोटा हो जाये और यदि इसने कह दिया है कि तू आत्मा है तो भय से ही सारी निचुड़ती जा रही है। बिटिया! यही बातें हैं जो बेकार रहने वाले लोग हमें सुनाकर अपनी आजीविका कमाते हैं, इन बातों में कुछ नहीं रखा। तू साधारण तथा शुद्ध है, अन्दर और बाहर से एक है, जो कुछ तू सुनती है उसी के पीछे ख्याल में चल पड़ती है और बाबली हो जाती है। तगड़ी हो, वीरों की सन्तान वीर हुआ करती है। कल मेरे साथ चल; एक सिंह ने वन में एक सिपाही का वध किया है, उसकी खोज करनी है और उसे मारना है। शिकार में चलकर तेरा हृदय प्रसन्न हो जायेगा।

मैं कुछ बोल तो न सकी, पर मुझे ढाढस बहुत आ रहा था। पिता जी कुछ समय के लिये प्यार देकर चले गये। फिर सन्ध्या हो गई। मैं इसी दशा में ही लेट गई। लेटते ही निद्रा आ गई।

मैं स्वप्न सुना करती थी, पर आप कभी स्वप्न देखा नहीं था, आज पहला दिन था कि मैंने स्वप्न देखा। मुझे रात को तकिये पर सिर रखने और सवेरे सिर उठाने का पता होता था। बीच में नहीं रात किस तरह व्यतीत हो जाती थी। आज जब आंख लगी तो मैं एक छोटे पत्थरों के विशाल मैदान में जा पहुंची। क्या देखती हूं कि बड़े-बड़े पत्थर और मिट्टी तथा रेत के कण-ही-कण पड़े हैं पर उस तरह नहीं जैसे मैं देखा करती थी, बल्कि अब यों लगे कि यह सारे जीवित हैं पर वैसे पड़े हुए

निर्जीव लगते हैं। यदि कोई तनिक-सी कला फिरे तो इन्हें होश भी आ जाये। इतने में मैंने क्या देखा कि वहां पर जल आ गया है और उन कणों को जल कहने लगा "हे कणिको! तुम तो सजीव हो, उठो, होश में आओ, तुम जड़ पत्थर नहीं हो; तुम जीवन हो, उठो होश करो, जल को बोलते तथा कणिकों को सुनते देखकर मैं हक्की-बक्की रह गई कि यह कैसे हो रहा है? यह कैसे बोल और सुन रहे हैं, पर यों ही हो रहा था और मेरा शौक बढ़ रहा था, अत: मैं और आगे होकर सुनने लगी, तब छोटे बड़े सभी कणिकों ने कहा, "हम इस दशा में पड़े अच्छे हैं, हे जल! तू आगे चल।" तब जल कहने लगा, "हे सरल हृदय! तुम जीवन हो, आओ मेरे साथ चलो मैं तुम्हें वहां पर पहुंचा दूं, जहां पर तुम अपने आप कह सको कि तुम जीवन हो।" अपने चलने की बात सुनकर एक ने कहा, "जा भाई अपने मार्ग पर चल, हम मंत्रणा करके तुझे कल उत्तर देंगे।" तब जल पीछे हट गया। अब कणिकों की पंचायत लगी। बड़े-बड़े पत्थर कहने लगे,-"हम बड़े सुखी हैं, सुख-सहित पड़े हैं, यह जल कोई स्वार्थी है, हमें दुखी करेगा। पहले हम उच्च पर्वतों पर निवास करते थे, एक जैसी सुन्दर तथा अधिक सफेद सी कोई आई थी, जो अपना नाम 'बर्फ' बताती थी, कहने लगी, मेरे कन्धे पर सवार हो जाओ, तुम्हें सैर कराऊँ। यहां पर लाकर हमें पटक दिया और स्वयं लुप्त हो गई। सौभाग्य से हमारे हृदय विशाल हैं, अन्यथा धूप से जल उठते, वह गर्म धूप हमनें पर्वत की धारा पर कभी नहीं देखी थी। इसी तरह यह जल हमें कहीं किसी उलटे स्थान पर जा मारेगा।" अब कुछ और कणिकायें कहने लगीं-"भाईयो? इस जल के हाथ हम देख चुके हैं, हम भी कभी चट्टान और बड़े-बड़े शिला पत्थर थे, यह जल धीरे से हमारी अदृष्ट झिरियों में घुसकर इस तरह जम गया और बल लगा दिया कि हमें टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। फिर अपने प्रवाह तथा लहरों में ऐसे पीसता कि हमें कण-कण करके

बिखेर दिया।" कई कणिकाओं ने कहा कि "यह ठण्डा है, लोभी नहीं दिखाई देता, कहा जाता है कि आकाश पर भी जा चढ़ता है और गहराई में भी चला जाता है और दूसरों को सुख देता है, इसलिये हमें भी सुख देगा। आओ इसका कहा मानें, जीवन बनें। इस अन्दर के अन्धकार में शताब्दियों पर्यन्त जिस ओर पड़े-सो-पड़े रहने से छुटकारा मिले। "जीवन" देखें तो सही कौन-सी वस्तु है? चलो चलें तो सही"। यह सुनकर बड़े ढेले और पत्थर तो नाराज़ हो गये और छोटे कणिके तैयार हो गये। बात यह कि उनमें एकता नही रही और दो दल बन गये। आगामी दिन जब जल धीरे-धीरे चलता हुआ और 'आओ जीवन बन जाओ' की सीटी बजाता हुआ आ गया तब छोटे बारीक कणिके तो 'सत्य वचन' कहकर उसके साथ चल दिये और बड़ों ने कहा, "हमें इच्छा नहीं।" जल ने क्रोध न किया, 'फिर सही' कहकर छोटों को साथ लेकर चल दिया।

अब जब वह चला तो वे कणिके आपस में रगड़ खाकर और बारीक होने लगे। बेचारे रोने और पछताने लगे कि हमने बड़ों का कहा क्यों न माना। जल ने उन्हें इतना बारीक कर दिया कि अपने स्वरूप में ही मिला लिया, कोई पता न लगता था कि विशुद्ध जल ही है कि इसमें मिट्टी, पत्थर धातुओं के अति छोटे कणिके भी मिले हुए हैं। इस तरह करके अन्त में जल एक खेत में पहुंचा और धरती के अन्दर घुस गया। वहां पर कितने ही बीज थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पड़े थे। जल ने आकर कहा-'हे अंकुर जी! आप बीज के मठ में समाधिस्थ हो रहे हैं, मैं आपके चरणों में जिज्ञासु लेकर आया हूं। आप इन्हें चरणों के साथ लगा लो।' तब अंकुरों ने कहा, 'हे जल! हम समाधिस्थ हैं और सुख में हैं, हमें कष्ट न दे।' तब पानी ने बहुत मिन्नतें कीं। वह जो बीज का चारों ओर कठोर कोट था

उसमें सुख से बैठे हुऐ अंकुरों ने कहा–'अच्छा भाई कल बताएंगे'; तो जल पीछे हट गया। रात को अंकुरों की पंचायत ने मन्त्रणा की। कईयों ने जो बहुत पके थे, कहा "हम आप बहुत सुखी हैं, हमें किसी से क्या," कई बच्चे थे कहने लगे "बड़ी मुश्किल से कोई पूछने वाला आया था, जो कुछ देता था शीघ्रता से ले लेना चाहिए था, भूल हो गई" इसी खींचातानी में थे कि पवन के उस भाग ने जो धरती में समाया हुआ था, अंकुरों को कहा–'अरे भोले! तुम जीवन हो, यह शेष बीज तुम्हारा तोष है, तुम स्वयं जीवन हो, मेरा कहा मानो, मैं तुम्हें धरती से बाहर ले चलता हूं और दिखाता हूं कि तुम प्रकाश में किस तरह आनन्द प्राप्त करते हो। यह जिज्ञासु जो आये हैं इन्हें चरणों के साथ लगा लो। यह तुम्हारे साथ मिलकर जाग उठेंगे और अपना जीवन देखेंगे। तुम इनके जीवन को अपने जीवन में लेकर और ऊंचे जीवन में आ जाओगे।' पवन का यह उपदेश सुनकर दूसरे दिन जब जल आया तो बहुत सों ने उसे चरणों के साथ लगा लिया और कई क्रोध से इतने लड़े कि जल गये, कई कूदकर बाहर आ गये उन्हें धूप ने मार डाला, कई इतने नीचे चले गये कि फिर उठ न सके, पर जिन्होंने उपदेश को माना था वे इर्द-गिर्द के कोट को फाड़कर बाहर निकल आये और उनके अन्दर जड़ें और बाहर पत्ते निकल आये। वे अन्दर खाने-पीने लग पड़े और बाहर वायु फांकने लगे। उन्होंने कहा, "देखो जी! 'पवन गुरू के उपदेश ने हमें सच ही बताया था, कि हम जीवन हैं।' यह रंग, यह रूप, यह लहरें, यह प्रकाश हमने कहां देखने थे, जिन्हें हमने धरती से बाहर आकर देखा है, निःसन्देह हम जीवन हैं।" अब पत्ते-पत्ते, शाख-शाख, फूल-फूल तथा फल-फल में वे कणिके, जो जल में मिलकर आये थे, अपने पहले रूप की स्मृति करने

लगे, जब वे मैदान में मृतक होकर पड़े थे। तब कहने लगे, "हम सचमुच जीवित हैं, हमारे साथ जल ने पिता वाला प्यार किया है। कहां से उठाकर हमें अपने में समा लिया है और किन के चरणों में लगाया और अब हम इनका रूप बनकर बढ़े हैं, प्रफुल्लित हुए हैं, रग-रग में रस रखते हैं, झूलते हैं और आनन्द लेते हैं।"

अब मैंने क्या देखा कि सभी फल, फूल, पत्ते आदि रोने लग पड़े और कहने लगे, "हमारा जीवन उड़ चला है।" तब उन्हें आवाज़ आई, "नहीं तुम ऊंचे होने लगे हो, 'जीवन' बनने लगे हो, जैसे पहले अस्तित्व से समाप्त होकर जीवन में प्रफुल्लित हुए थे अब जीवन से मरकर प्राणों में प्रफुल्लित होगे," पर वे न समझ सके और सहम गये। इस समय कई प्रकार के जीव आये हुए थे, कोई चार पैरों वाले, कोई पंखों वाले कोई सीधे चलने वाले, कई झुककर चलने वाले। कोई आकर पत्तों को खा गया, कोई डालियां खा गया, किसी ने जड़ें खा लीं, कोई फूल तथा फल खा गया, पर उनके अन्दर जाकर देखो, वे कणिके उनके शरीर का भाग बन गये और जहां पर यह पौधे बनकर धरती पर एक स्थान में गाड़े हुए थे, भागने-दौड़ने लगे, जहां पर यह मूक थे, जिह्वा में पहुंचकर बातचीत करने लग पड़े, जहां पर यह अन्धे थे, नयनों में आकर देखने लग पड़े। जब मैंने लौटकर देखा तो इन सब में वे पवन, जल तथा धरती के कणिके रूप परिवर्तित करके सजीव होकर जीवन बन फिरते थे। एक तो प्राणधारी मनुष्य अपने-आपको एक जीवन वाला समझता है और कहता है कि मैं जीवित हूं, अथवा मेरे में जीवन है, दूसरा मैंने क्या देखा कि उसके शरीर का प्रत्येक कणिका भी जीवित है।

अब मैं अचम्भित हो गई कि मैं जिस संसार को मृतक पत्थर की भांति जानती थी, वह सारे का सारा जीवित है, कोई कणिका भी जड़ नहीं है। इस समय एक नम्रमूर्ति की आवाज आई :– 'सरले ! जिस तरह मिट्टी के कणिके में तुझे विशुद्ध निर्जीवता लगती थी इसी तरह किसी और सिरे पर विशुद्ध प्राण हैं, बीच में एक मार्ग है जो निर्जीवता से जीवन तक जाता है। तू जहां पर खड़ी है यह दोनों सिरों के बीच में, जहां पर एक स्थान[१] है, तू पीछे से चलकर यहां तक पहुंची है, आगे और यात्रा है, तू ने चल–चलकर, स्वच्छ हो–होकर अन्त में "विशुद्ध जीवन" के पास पहुंचना है, पर तू अभी समझती नहीं।" मैंने कहा, "मैं जीवित हूं" यह तो मैं समझती हूं, पर मेरे शरीर का भाग जीवित है, इसे नहीं समझ पाई। तब आवाज़ आई, "तू आत्मा है, शरीर आत्मा नहीं, पर हां शरीर भी तेरा जड़ नहीं जीवित है। पर शरीर के कणिके–कणिके का जीवन नीचा है जो जड़–सा लगता है।" फिर किसी ने कहा, 'सूर्य अपने में प्रकाश का गोला है। सूर्य का प्रकाश धरती के ऊपर मन्द है। पर धरती के ऊपर खुले स्थान की अपेक्षा परछाई में प्रकाश कम है और बन्द कमरे में और भी इसकी अपेक्षा कम है। तू तो कहती है कि बन्द कमरे में अन्धकार है, पर हम कहते हैं कि प्रकाश बन्द कोठरी में भी है, पर बहुत कम है। वह अंधेरा नहीं पर अति घटिया प्रकार का प्रकाश है। इसी तरह तू जीवन है, तेरे जीवन के सामने तेरा शरीर जड़ है, पर वैसे यह भी जड़ नहीं। इसके क़ण–कण में भी प्राण हैं चाहे वे बहुत ही नीची स्तर के हैं।

अब मैंने क्या देखा कि उन जीवों में एक भाग खड़ा था। जब मैंने भलीभांति देखा तो यह मेरे ही जैसा मनुष्य था। इसके शरीर के कण–कण को मैंने देखा उनमें जीवन था, पर वह जीवन यह नहीं कह सकता था या जान सकता था कि वह

---

१. अघ पंधै है संसारोवा ।। (वडहंस महला १)

जीवन है, पर इस मनुष्य में कुछ और ऐसा था जो कहता था – मैं जीवन हूं मैं प्राण हूं, और वह अपने-आपको ही मनुष्य समझता था और इसके अतिरिक्त सब को अपने सापने मृतक समझता था, पर तब भी अपने शरीर के पवन पानी धरती के कणों को अपनी जान के समीप कुछ जीवित-सा समझता था और इस पवन पानी धरती को इससे दूर तथा जड़ समझता था। इसके शरीर के रहस्य को स्पष्ट रूप से देख-देखकर मैं अचम्भित हो रही थी कि किसी और मनुष्य ने इस मनुष्य को आकर कहा – "अरे भोले ! तू तो बुद्धि है। तू क्यों अपने-आपको केवल प्राण तथा जीवन समझता है? तू तो विशुद्ध बुद्धि है। यदि तू बुद्धि हो जाये, तो सुखों का, जो झूठे हैं, त्याग कर दे।" तब वह रोने लगा और उसने समझा कि यदि मैं जीवन तथा प्राण नहीं तो मेरी मृत्यु हो जोयगी। जब वह मृत्यु से डरा तो बताने वाले ने कहा – "सुणिऐ पोहि न सकै कालु।" पर मैं समझ न सकी कि क्या है ? तब उसने बताया – भोले ! तुझे मृत्यु मार नहीं सकती; तू तो नख से लेकर शिख तक प्राण है। मरता कुछ नहीं, केवल रूप परिवर्तित होता है। "मंनै सुरति होवै मनि बुधि ।। मंनै सगल भवण की सुधि ।। मंनै मुहि चोटा ना खाइ ।। मंनै जम कै साथि न जाइ ।। ऐसा नामु निरंजनु होइ ।। जेको मंनि जाणै मनि कोइ ।।१३।।

मैंने तो उस समय इसे पश्तो[१] की भांति अपरिचित समझा पर उस बड़े मनुष्य ने कहा – यदि तू मान ले, जो कुछ तूने अब मेरे से जाना है और नाम को जाने तो तू जानेगा कि मरता कुछ नहीं। सुरत मन तथा मन बुद्धि और बुद्धि शुद्ध (अथवा सीधी) हो जाती हैं। यदि तू शरीर को जानता है कि यह मृतक है तो भी मुर्दा नहीं, अपने रंग ही तबदील करता है। पवन, पानी, धरती के नाना रूप हैं जो संयोग (आकर्षण) तथा वियोग (धक्के) के

१. अफगानिस्तान की भाषा ।

साथ परिवर्तित होते, बनते, प्रफुल्लित होते, फैलते तथा सिकुड़ते, शुष्क होते रहते हैं। यह सुनकर उस मनुष्य को दीख पड़ा कि मैं बुद्धि हूं तो वह बहुत प्रसन्न हुआ, पर अब वह बाहर से चुप पर अन्दर से उसे अपना-आप ऊंचा लगने लगा, उसे भूल कम लगती। जैसे मैं बाण मार बैठी थी और बाद में पता लगा था कि मैंने बुरा किया है कि पहले पता करके मारना था। अब में देखती कि उस मनुष्य को पहले ही पता चल जाये कि अमुक काम बुरा है और अमुक अच्छा है। यह देखकर मुझे होश आ गया कि यदि कभी मेरा चंगा मनुष्य कहता कि तू बुद्धि है तो मैं भी इस मनुष्य की भांति प्रसन्न हो जाती। पर अभी में देख रही थी कि आवाज़ आई "तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि ।।" मुझे फिर पश्तो ही लगी, पर उस मनुष्य ने उसे कहा -'तू बुद्धि नहीं तू सुधि (सिद्धि) है। बुद्धि खो दे और सिद्धि प्राप्त कर ले।' तब वह रोने लगा कि इतना प्रकाश खोकर मैं अन्धकार हो जाऊंगा, पर रोते-रोते, वह सिद्धि वाला हो गया पर उसे और बात-जिसका हमें पता ही नहीं-दिखाई देने लगी। बुद्धि भी जिस बात के सामने निकम्मी थी उसे प्रत्यक्ष हो गया। बुद्धि तो पता, खोज लगाकर देखती थी, कारण तथा कारज विचार कर अनुमान लगाती थी, पर सिद्धि को वैसे ही समझ आती थी। अब वह बहुत प्रसन्न हुआ तो बुद्धिमान ने कहा, "हे पवन गुरू, पानी पिता, धरती माता, काल(दिन-रात) धाय (गर्मी, प्रकाश, सर्दी अंधेरे) की गोदी में खेलते हुए जीवन के कणिके ! देख! तू मर-मरकर कहां पर आ गया? तेरी यात्रा समाप्त हो चली है। तू अब दृष्टा से दृष्टमान होने लगा है, देख तू आत्मा है," यह कहते ही उसने एक हाथ मारा और गायन किया, "वेखै विगसै करि वीचारु।" और देखो वह मनुष्य और का और हो गया। मेरी आंखें उसके प्रकाश-रूप को देख न सकीं, सिर झुक गया। मेरी जिह्वा, कान नेत्र सब बन्द हो गये और मैं डर गई; पर इस भय में मैं प्रसन्न हुई, रोई नहीं।

मैं अभी स्वप्न में ही थी, पर अचम्भित हो रही थी कि सब कुछ आंखों के आगे से हट गया। चन्द्रमा का प्रकाश था, एक मैदान था और एक मैं थी। पर अब चल नहीं रही थी; मैं शरीर-सहित उड़ रही थी और प्रसन्न थी, पर यह प्रसन्नता कुछ और तरह की थी, वैसी नहीं थी जैसी मुझे प्रतिदिन घर में तथा खेलों रंगों में प्राप्त होती थी। यह हलकी, ठण्डी, मन्द तथा अन्दर की ओर खींचने वाली थी, जब मेरी निद्रा खुली, मैं शीघ्रता से नहीं उठी, पर अचम्भित हो गई, देखती और सोचती थी कि यह स्वप्न था कि प्रत्यक्ष ? जब प्रत्यक्ष रूप से कुछ भी दिखाई न दिया तो मैंने समझा कि यह स्वप्न था और इसी तरह के दिखावे को लोग स्वप्न कहते हैं - पर जितने स्वप्न मैंने सुने थे वे प्रायः भय तथा उदासी वाले होते थे और मैं स्वप्न में से प्रसन्न होकर उठी थी। जब पूरी होश में आ गई तो उसकी चारपाई पर से मन्द सी आवाज़ आ रही थी, जो उस समय तो मेरे लिए पश्तो थी, पर जीवन वही है, वह यह है :-

"ज़तु पाहारा धीरजु सुनिआरु।।
अहरणि मति वेदु हथीआरु।।
भाऊ खाला अगनि तप ताऊ।।
भांडा भाऊ अंमृतु तितु ढालि।।
घाड़ीऐ सबदु सची टकसाल।।
जिन कऊ नदरि करमु तिन कार ।।
नानक नदरी नदरि निहाल।।३८।। *(जपुजी)*

मैं उठकर बैठ गई। उधर (चंगे) जी के अधर मुन्द गये, पर नयन अभी खुले थे। मैं पास गई और देखा, मैंने उस चंगे मनुष्य के हाथ पकड़ लिये और कहा - "क्या मैं सचमुच आत्मा हूं?" तब उसने कहा, "हां !" उसने मुस्कराकर कहा - "तू 'बुद्धि' है, तू 'सिद्धि' है, हां तू 'सुधि' है, तू 'आत्मा' है।" मैंने कहा - "यह तो स्वप्न में सुना था, तो वह स्वप्न से सुना

था, तो वह स्वप्न नहीं प्रत्यक्ष था?" फिर वे हंसकर कहने लगे, 'तिथै सीतो सीता महिमा माहि।' में समझ न सकी, पर वह कहने लगा "तैयार हो जा, तूने वाण मारा था, तुझे वाण लगेगा? तेरे वाण ने शरीर का वध किया था, जो वाण तुझे लगेगा वह तुझे शरीर से आत्मा बनायेगा।" मैं फिर भी न समझी। दो घड़ी के पश्चात् कहने लगा – "रोना मत। रोना तो शरीर का काम और मन का स्वभाव है। बुद्धि रुदन नहीं करती, सुधि नहीं रोती, आत्मा नहीं रोती। अब तू भी मत रोना।"

मैने कहा "मैं कभी नहीं रोई, जब केवल शरीर थी और यह भी नहीं जानती थी कि मैं शरीर हूं या कुछ और उस अज्ञानता में भी कभी अश्रु नहीं गिरे, पर तब रोई हूं जब तुझे तीर मार बैठी हूं जब तुमने कहा है कि तू कुछ और भी है।"

कहने लगे "और कुछ होने ने नहीं रुलाया शरीर के विछोह के डर सहम ने रुलाया है और अब तू इस भय से पार है अब न रोना।"

फिर कहने लगे– "पर तुझे अभी रोना है, पर रोने में ही समाप्त न हो जाना; सुन! मुझे चला जाना है, तू प्रसन्न रह और आबाद रह ।"

यह कहना ही था कि मेरे नयन भर आये? दिल टूट गया, अन्धकार छा गया। सपने की बातें और ऊंचा मान – कि मैं शरीर से ऊंची हूं–उड़ गया। मैंने चंगे के दोनों हाथ दबाकर कहा – 'जाओ मत, यदि जाओ तो मुझे भी साथ ले चलो।' कहने लगे, 'मेरा शरीर तो कहीं नहीं जा रहा, शरीर तो यहां पर ही रहेगा, पर, मैं नहीं रहूंगा। वैद्यों ने बहुत प्रयत्न किया है, तुमने बहुत सेवा की है मैं तुम्हारा ऋ्ण नहीं उतार सकता और मैं अब जी भी नहीं सकता। मेरे जाने के पश्चात् पण्डित के कहे अनुसार दुःख न करना कि तुमने पाप किया है और मैं उसका बदला लूंगा। तुमने जो कुछ किया है, अनजाने में किया है, मेरे भाग्य इसी तरह के थे। यदि अब भी तुम अन्दर से पाप का विचार 'कि मैंने वाण मारकर पाप किया है,' न निकाल सकी तो मैं कहता

हूं कि मैंने तुम्हें क्षमां कर दिया, इसलिए निर्भय हो जाओ। जो मैंने कहा है: 'तू आत्मा है,' इसे ध्यान में रखना, पर इसे ध्यान में रखना कठिन है।

मैं अब फिर सिसकियां भरकर रोई, सर्वोत्तम मनुष्य जिसके देखे बिना में एक क्षण भी नहीं रह सकती, जिसकी सेवा में सुख है, जिसका आकर्षणं मुझे अपने-आपसे बांधे रखता है, जिसके चंगे लगने से सभी आनन्द, खेल और सुख, रंग भुला दियो हैं, वह कहता है कि मुझे मर जाना है। वैद्य जी कहते थे- "स्वस्थ हो गया है" यह कहते हैं- "मर जाना है।" पर वैद्य तो लोगों ही जैसा है, वह क्या जानता है? यह सर्वोत्तम है, यह जानता है, इसलिए जो कुछ यह कह रहा है, ठीक है ! "ऊंह।" मैं साथ ही मरूंगी। उंसी बाण को छाती में चुभो लूंगी, तेरी चिता में छलांग मार दूंगी।" वे चुप हो गये, नयन मूंद लिये, पर फिर खोले और कहने लगे- "तू आत्मा है, न बाण चुभोना और न ही जलना, जहां पर मैं जा रहा हूं, तूने यदि आत्मघात किया तो तू वहां पर नहीं पहुंच पायेगी; यदि तूने मेरा कहा माना तो तुझे मृत्यु अपने-आप आयेगी और तू वहां पर आयेगी।" मैंने रोकर कहा- "कैसे आऊंगी? मुझे तो खेलों ने मुग्ध कर रखा है, मैं प्रसन्नताओं में मुग्ध रही हूं। चंगे ! कभी मेरे धनुष से बाण निकलने से पूर्व ही तेरे से भेंट जो जाती !" तब वह कहने लगा, "एक और मनुष्य है, मनुष्य का सरदार और उच्च व्यक्तियों की सरकार जो संसार में सर्वोत्तम है, जिसे मैं वह कुछ करता हूं जो तूने मेरे साथ किया है, जिसे प्रेम कहते हैं। यदि तू मेरा एक कहा माने तो वह तेरे पास आ जायेगा। वह मुझे बहुत प्यार करता है, वह तुझे भी बहुत प्यार करेगा और तुझे सचमुच आत्मा बना देगा। मैंने जो कुछ कहा है, वह उसे पूरा करेगा। वह मेरा साहब है, मैं उसका दास हूं। वह मेरा मिता है, मैं उसका दास हूं-पुत्र हूं। तूने मेरी सेवा की है, मेरे साथ प्यार होने के कारण वह तेरे पास आयेगा। तूने जो मेरे साथ प्यार किया है वह इसका

तुझे पुरस्कार देगा वह पुरस्कार जो राजाओं तथा राठों के पास भी नहीं होता ।

तब मैंने कहा –"तेरे से अच्छा और कौन है? पर तू जो सर्वोत्तम है, जो कहता है मैं उसे मानती हूं कि वह अवश्य ही उत्तम होगा तू कहता कि वह तुझे प्यार करता है इसलिए मुझे अच्छा लग गया है, पर तू उसका पता बता, मैं भाग कर उसके पास चली जाऊं और मिन्नतें करके कहूं–हे मेरे चंगे–के–चंगे! मेरे चंगे के शरीर की रक्षा कर। मैंने जो अपराध किया है उसे इस तरह क्षमा कीजिए कि सारी आयु जी भरकर सेवा कर लूं और एक क्षण भी पृथक न होऊं। मैं उसे वह करती हूं जिसे 'वह चंगा' प्रेम बताता है, तुम भी उसके साथ वही कुछ करते हो। मेरा जी नहीं चाहता कि वह मरे, तुम उसे कैसे मरते हुए देख सकते हो? तुम जो शरीर से आत्मा बना सकते हो, शरीर की भी रक्षा कर सकते हो, आओ और साझे से प्यारे की रक्ष कर लो।"

मेरी इस भोले प्यार की तीव्र तृष्णा को देखकर 'चंगे' जी हंसने लगे और कहने लगे–"सरले ! उनका प्यार एक ओर है : जो कभी शरीर में नहीं आया, जो सारे संसार को रचने वाला स्वामी, पालने वाला और शिक्षक है, उसकी इच्छा है कि मैं अब भेजा जाऊं। अपने प्यारे की इच्छा में वे प्रसन्न हैं, उसकी इच्छा में मैं प्रसन्न हूं, तुझे यदि मेरे साथ सच्चा प्यार है तो मेरी इच्छा है तू प्रसन्न हो।" मैंने कहा, "क्या तुम मरने में प्रसन्न हो?" उत्तर मिला, "प्यारे की इच्छा मानकर प्रसन्न हूं।" मैंने कहा, 'अहो ईश्वर ! यह इसलिये तो सबसे अच्छा है। सारा संसार मृत्यु से डरता है, यह मृत्यु में भी प्रसन्न है।" मैंने कहा – "तुम क्यों नहीं डरते?" उत्तर मिला – "मरता कुछ भी नहीं, देही मिट्टी में चली जाती है, 'आत्मा'–जो मैं हूं–सचखण्ड (सत्यलोक) में प्रसन्नता तथा आनन्द प्राप्त करती है; मुझे अपने प्यारे के चरणों में जाना है, इसलिये में रोता नहीं, प्रसन्न हूं कि मुझे तेरे प्यारे का प्यारा आकर मिल जायेगा। तू भी मत रो, प्रसन्न हो और यदि तू

रोई तों मैं तेरे साथ प्रसन्न नहीं होऊंगा । यह सुनकर मैं डरी और कांपी और कहने लगी : "क्या तेरा प्यारा मुझे तेरे जैसा लगेगा?" उसने उत्तर दिया, "अब जो कुछ तुझे पेरे में प्यारा लगा है वह वही है। मैं मनुष्य जैसा हूं, पर मेरे में वही है, जो चंगा है और तुझे प्यारा लग रहा है। हां वह तुझे अवश्य ही प्यारा लगेगा, वह है ही सारा प्यार, वह तुझे प्यार भी करेगा, पर उससे तब भेंट होगी जब तू प्रतिदिन एक काम करेगी।" मैंने कहा, "क्या?" कहने लगे : "चलते-फिरते, उठते-बैठते, प्रत्येक समय 'वाहिगुरू' कहती रहना।" यह कह कहकर उसने अधर मूंद लिये, नेत्र मुन्द गये, एक क्षण के पश्चात् 'वाहिगुरू' की आवाज़ कितनी बार आई, नेत्र आश्चर्यजनक ढंग से खुले और फिर मुन्द गये। मैंने समझा कि सो गये हैं। अब दिन हो गया था, मां आ गई और चंगेजी की ओर देखकर कहनें लगी,- "बिटिया। इसकी तो मृत्यु हो गई है।" मेरी चीख निकल गई, रोने लगी, पर किसी ने कान में कहा, 'यदि तू रोई तो मैं प्रसन्न नहीं होऊंगा।' फिर मुझे भय लगा, मैं सहमी, कण्ठ शुष्क हो गया कि 'इसकी मृत्यु नहीं हुई' फिर ध्यान आया कि प्यारे का प्यारा आयेगा। फिर ध्यान आया कि यदि 'वाहिगुरू' कहूंगी तो आयेगा। अत: मैं चुप कर गई और 'वाहिगुरू', 'वाहिगुरू' करने लग पड़ी। मेरा रोने को जी करता, कण्ठ रुंध जाता, कलेजा टूटता, हाथ बाण की ओर जाता, पर फिर प्यारे की आज्ञा ध्यान में आ जाती और मैं 'प्यारे के प्यारे' को अपने अन्दर-ही-अन्दर 'वाहिगुरू', 'वाहिगुरू' करके आवाज़ें लगाने लग पड़ती।

इस तरह दुख, चिन्ता और उसकी आज्ञा का पालन करने के यत्न में मन-ही-मन में ठोकरें खाते उस सबसे चंगे, सर्वोच्च, सबसे प्यारे के शरीर का दाह किया। तब इस बात का पता न चला कि यह किस देश का निवासी था, क्यों आया था, किस सुलक्षणी मां तथा भाग्यशील पिता का पुत्र था ?

: ३ :

मेरी अम्मां तथा बापू जी को बड़ा भय था कि इस चंगे मनुष्य के मर जाने के दुख में कहीं बिटिया की मृत्यु ही न हो जाये, पर मेरे धैर्य को देखकर वे हैरान तथा प्रसन्न थे। दिन बीत गये, पर मेरे खेल, मेरे प्रयत्न और मेरी मौज़ बहारें न लौटीं। इनमें से किसी में भी मेरा जी न लगा। बापू जी ने बड़े यत्न किये पर कोई वश न चला। मैं रोती नहीं थी; पर वे प्रसन्नताएं, जो मेरे माता-पिता के महलों में मेरे लिए स्वर्ग थीं, बन्द हो गई। वे डर के मारे मुझे कुछ भी कहते थे कि मै कहीं ज्यादा न हो जाऊं। मैं कभी-कभी हंस भी पड़ती थी, बापू जी से कण्ठ मिलकर प्यार भी करती थी, अम्मा की ग़ोदी में भी जाकर बैठती, पर वह हिलोर तथा वह चाव, वह खेलकूद और वह बकवाद सपना हो गए। मेरी आंखों के आगे सर्वोतम की मूर्ति प्रत्येक समय फिरती दिखाई देती और जिह्वा उसके प्यारे को आवाज़ें लगाती और मन इस लालसा में रहता कि प्यारे-का-प्यारा आयेगा ।

मेरा जी अब कुछ घर महलों से उदास हो गया। मैंने बापू जी से कहा - 'मुझे वन में एक कोठरी बनवा दीजिये, जहां पर मैं मन बहलाने के लिये जाया करूंगी। बापू जी प्रसन्न हुए कि बिटिया का मन बहलेगा। कहले लगे, "जहां पर तू कहे, वहीं पर बन जायेगी।" मुझे और किस स्थान की खोज करनी थी? "चंगे जी" जिस खंडहर पर आप बैठे थे, उनके रक्त से पवित्र हुई और अपने किये हुए अपराध से किसी और लगन में लग जाने की कृतज्ञता में मैंने इसी स्थान को पसन्द किया। बापू जी महल बनवाने लगे, पर मैंने कहा कि 'पुरानी ईंटें, पत्थर तथा अन्य सामग्री ढेर में से निकालो और छोटे-से स्थान कर निर्माण करवा दो। गिरे हुए में ही प्राण भर दो और यदि वही नहीं तो उस जैसा ही बना दो।" अतः कारीगरों ने ढेर में से सामग्री की खोज

की, कुछ और सामान मिलाया और इसका निर्माण करवाया। अब मेरी यह रंगभूमि थी। तड़के एक पहर, सायंकाल को एक पहर मैं यहां पर आकर प्यारे-के-प्यारे को जी भरकर आवाज़े लगाती थी। जी तो चाहता था कि यहां पर ही निवास करूं, पर बापूजी और अम्मां जी इस बात में दुख मानते थे।

एक दिन जब दोपहर को मै घर में गई और खाना खाकर लेटी, पंखा झुलाया जा रहा था तो मैंने नैन मूंद लिये और लगी अन्दर-ही-अन्दर प्यारे का देखने और प्यारे-के-प्यारे को, जिसे मैंने अभी देखा नहीं था, आवाज़ें लगाने लगी। अम्मां ने समझा कि मैं सो गई थी, बापू से कहने लगी, "बिटिया अब बड़ी हो गई है, इसका विवाह कर दें, विवाह हो जाने से इसे गृहस्थ का बन्धन पड़ जायेगा और उदासी का त्याग कर देगी।" बापू जी भी सोच में पड़कर कहने लगे, "जी तो मेरा भी चाहता है पर क्या करूं? डरता हूं कि कहीं विवाह करवाकर भी उदास ही रही और यदि सुसराल में न रही तो नाक कट जायेगी और कष्ट अलग होगा। अच्छा आज महतो से तथा पण्डित जी से मन्त्रणा करूंगा।"

जब बापू जी चले गये जो मैं उठी और अम्मां की गोदी में जाकर उससे गले मिल करके कहा, "प्यारी अम्मां! तुमने जो कुछ आज बापू जी से कहा है, मैंने वह सब कुछ सुन लिया है, मैं सो नहीं रही थी। तुमने जो मन्त्रणा दी है मेरी भलाई के लिये दी है और मैं तुम्हारा तथा बापू जी का कहा टाल भी नहीं सकती, पर मैं इस तरह और ज्यादा दुखी हो जाऊंगी। अब मैं कुछ सुखी हूं। यद्यपि खेलती-कूदती नहीं तथापि मैं रोती-चिल्लाती भी नहीं और कभी-कभी ऐसे ही होता है कि मेरे अन्दर एक प्रसन्नता की झंकार होती है, जिससे मेरे रोम में से सुख के फव्वारे निकल पड़ते हैं, मैं फूल की भांति हल्की और शीतल-सी हो जाती हूं। उस समय मेरा मन नाचता-कूदता नहीं, कुछ

सुकड़-सा जाता है और यही इच्छा होती है कि मैं इसी तरह बैठी रहूं। इस तरह का सुख कभी झलक-सी मार जाता है। उसके पश्चात् फिर मैं चलती-फिरती हुई दुखी नहीं होती। यदि तुमने मेरा विवाह कर दिया तो मेरा यह सुख चला जायेगा और पहला सुख लौट नहीं सकेगा, तब मैं अब की अपेक्षा भी अधिक दुखी हो जाऊंगी। इस मन्द तथा शीतल सुख के लिए, जो मुझे अब कभी-कभी प्राप्त होता है, किसी दूसरे सुख की आवश्यकता नहीं, यह अन्दर से ही उत्पन्न हो जाता है और कई बार मुझे आशंका होती है कि यह प्रसन्नता ही तो कहीं आत्मा नहीं, जो चंगे मनुष्य ने कहा था कि तू आत्मा है और शरीर नहीं। मुझे पक्का पता तो नहीं पर इतना अवश्य ही जानती हूं कि मुझे अन्दर से शारीरिक सामग्री के बिना कभी-कभी एक शीतल-से सुख की झलक पड़ जाती है। अच्छी अम्मां ! यदि तुमने मेरे सुख तथा मेरी प्रसन्नता के लिए विचार करना है तो मुझे और बन्धन में मत डालना, मैं तुम्हारा कहा तो नहीं टालूंगी, पर मैं प्रसन्न नहीं रह सकूंगी ।"

यह सुनकर मां ने कहा – "बिटिया ! तू सच कहती है, पर अब तू बड़ी हो गई है, कुछ तो सोच भी कर न, पहली आयु में तू खेल में निश्चिन्त रही। जब तेरी आयु अक्ल तथा होश वाली हुई तो तू वैराग्य में बहकर उदासिनी हो गई। अभी तक उदासी से तेरा मन नहीं लौटा, अब समय बेफिक्री में व्यतीत हो जाने का नहीं। हमारी आयु बढ़ रही है और तेरे बिना हमारी और कोई सन्तान नहीं। इस परगने में हमारा ही राज्य चलता है। आस-पास के खरल भट्टी[१] तथा अनेकों अत्याचारी मुसलमानों के परगने हैं, यदि कोई व्यक्ति हमारे जीवित ही हमारे राज्याधिकार के योग्य न हो जाये तो हमारे पीछे हमारी इस परिश्रम की कमाई को शत्रु ले जायेंगे; इससे बचने के लिये हम यही कर सकते हैं

१. उस समय की राजपूतानियों के नाम ।

कि तेरा विवाह किसी बड़े बहादुर शूरवीर के साथ कर दें और अपनी आंखों से तुम्हारी शूरवीर सन्तान को देख लें; और शीतल हृदय से मृत्यु को प्राप्त करें, इसलिये कि हमारे राज्य को संभालने वाले पीछे हैं। यदि तूने उदासी धारण की तो एक भय और भी है - सारे मुसाहिब, महतो तथा पण्डित साहित अब तेरे बापू जी को दूसरा विवाह कर लेने की मन्त्रणा दे रहे हैं कि किसी तरह पुत्र सन्तान पैदा हो जाये। तेरे बापूजी का मेरे साथ अत्यन्त स्नेह है, वे जानते हैं कि दूसरे विवाह से मैं दुखी हो जाऊंगी और मेरे दुखी होने से बिटिया और दुखी होगी, इसलिये उन्होंने अभी किसी की मन्त्रणा की ओर ध्यान नहीं दिया । पर बिटिया! कब तक? प्रतिदिन की सीख तो पत्थर भी फोड़ देती है। दूसरे, राजाओं के तो कान ही होते हैं, आंखें तो होती ही नहीं। प्रतिदिन की सलाह ने बड़े-बड़े राजघरानों को फोड़ दिया, बड़े-बड़े विद्वान तथा चतुर राजा, जिनके सम्बन्ध में कहा जाता था कि चापलूसी के चक्कर में पड़ते ही नहीं, चतुर मन्त्रियों तथा चापलूसों के चक्कर में आकर भूल करते हैं।"

बेटी - अम्मां जी ! भला कभी देखकर भी कोई विष खाता है ?

मां - बिटिया ! विष मीठे के भुलावे में से खाया जाता है, जान-बूझकर कौन खाता है? इसी तरह यदि राजा को दीख पड़ा कि मन्त्री चापलूसी करते हैं और धोखा दे रहे हैं तब तो राजा नहीं फंसता। राजा लोग भी तब फंसते हैं जब झूठ तथा चापलूसी को सच समझ लेते हैं और किसी तरह उनके सामने वास्तविक रहस्य नहीं खुलता। बिटिया ! ऐसी घटनायें राजघरानों में हैं। मेरा प्यार कब तक अपना प्रभाव बनाये रखेगा? जहां पर दुष्ट मन्त्री रात-दिन कान भरें, फिर तू ही सोच ले कि तेरी और मेरी क्या दशा होगी? मैं तेरे दुख में प्रसन्न नहीं, पर दूसरी ओर भी सुख की आशा नहीं है।

यह सुनकर मैं सोच में पड़ गई, पर जन्म से ही मेरा स्वभाव सोचने का कम था। जो बात आई उसे झट समझ लिया और सीधी बात सोचकर कह दी, उसी तरह अब एक सीधी-सी बात सोची और मां से कहा - "अम्मां जी ! यदि एक भैया आ जाये तो फिर तो किसी मन्त्री का वश नहीं चल सकता?" मां हंसकर कहने लगी - "बात तो तेरी ठीक है, पर बिटिया ! यह कोई अपने वश की बात है ? तेरे भैया की प्रतीक्षा करते और मिन्नतें मानते हुए यह दिन आ गये हैं, पर ईश्वर की इच्छा, हमारे भाग्य में यह सुख नहीं, इसलिये हमारी इच्छा पूरी नहीं हूई, तब मैंने कहा, "मां जी! तुम डोलो मत, मेरा अंतस जो कभी-कभी प्रसन्नता की लहरें लगाया करता है, वह मुझे कहता है कि सबसे अच्छे मनुष्य का जो प्यारा है वह बहुत बलवान् और राठों का कोई सरदार राठ है। यद्यपि मैंने उसे देखा नहीं, तथापि मुझे पास-पास ही दिखाई पड़ता है, वह, वह तब का ही मुझे नहीं भूला। मेरे अन्दर इस तरह की लहर भी उठती है कि वह जानता है कि मैं उसे प्रतिक्षण स्मृति में रखती हूं। यदि मैं उसे कहूं कि वह एक भैया हमें दे दे, तो न जाने क्यों? पर मेरा मन साक्षी भरता है कि वह सुन भी लेगा और दे भी देगा।"

अम्मां सुनकर मुस्कराई। कहने लगी, "बिटिया! तू जैसी बेपरवाह होती थी वैसी ही भ्रमशील भी हो गई है।" मैं रोने लगी, फिर अंगमिलन करके कहा - "जी ! यदि एक भैया आ जाये, फिर तो तुम्हें कोई दुख नहीं होगा?" मां हंसने लगी और कहने लगा, "फिर मैं तो अवश्य ही सुखी हो जाऊंगी पर तेरा इस तरह रहना भी सुखदाई नहीं।" तब मैंने कहा, "अम्मां ! मेरे दुख की चिन्ता मत कर, मैं तो किसी और चक्कर में पड़ गई हूं। तुम्हारा दुख मेरे चले गये प्यारे का आने वाला प्यारा अवश्य ही दूर करेगा। मुझमें कोई अक्ल नहीं, पर मेरा जी कहता है कि यह कुछ होगा ।"

इस तरह की बातों के पश्चात् मैं अपने 'मठ' को चली आई। प्यारे जी को चले गये तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। मेरे अन्दर उनकी सूरत प्रत्येक समय बैठी दिखाई देती थी और मेरे मन में से उस प्यारे-के-प्यारे की स्मृति कभी नहीं भूली थी, जो नाम वे मुझे बता गये थे वह मुझे किसी क्षण भूलना तो दूर रहा, मुझे इस मठ में बैठे कभी-कभी यों लगा करे; जैसे मेरे सारे रोम जिह्वा हो गये हैं और सब में से वही आवाज़ सुनाई दे रही है। एक दिन तो ऐसी झलक आई कि मैं इसी दशा में आंखें खोलकर देख बैठी; और फिर तो वृक्षों के पत्ते-पत्ते को जिह्वा लगी हुई दिखाई पड़ने लगी। जिस ओर मेरी दृष्टि जाती, प्रत्येक ओर वस्तु उस प्यारे-के-प्यारे को वही नाम लेकर पुकारती हुई दिखाई देने लगी। मुझे इस दशा में एक अनोखी-सी प्रसन्नता लगती थी, और इस रंग के अलावा उस समय और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। केवल इसी रंग का होश था, और कोई सुधि नहीं थी। काफी समय मैं इसी दशा मे रही। फिर धीरे-धीरे मुझे होश आ गया, पर इस दिन से यह हो गया कि मेरे रोमों ने किसी समय भी जिव्हा का काम नहीं छोड़ा; न बैठे समय, न चलते-फिरते, न बातें करते समय और न ही सोते समय। मैं कहती, "हे मेरे मन ! यह क्या बन रहा है? प्यारे-के-प्यारे की केवल स्मृति ही इनती स्वादिष्ट है; उससे भेंट न जाने कितनी स्वादिष्ट होगी।" फिर मैं सोचती कि जीवन के बिना तो कुछ है ही नहीं, मैं तो सारे सब कुछ को जीवित देख चुकी हूं। सब कुछ इसी प्यारे के आश्रय से होता दिखाई पड़ रहा है, पर मुझे अब दिखाई पड़े कि पत्थर तो अभी पड़े हैं, पौधे गड़े ही हुए हैं, पशु-पक्षी बेसमझ ही हैं, फिर यह सारे कैसे आवाज़े लगा रहे हैं? फिर ख्याल आया कि मैं आत्मा हूं, पर हां ! वे प्यारे जी बताया करते थे कि वह परमात्मा छिपकर देखने वाला है, कहीं यह उसी के चमत्कार की झलक तो नहीं थी? पर फिर मुझे

ध्यान आया, कि सोचने और सोच-सोचकर चकित होने और चकित होकर मूर्ख बनकर उदास होने का क्या लाभ है? इस तरह का स्वाद भी खो जाता है, प्यारे के प्यारे का नाम भी भूलने लगता है, मुझे सोच में बहकर क्या लेना है? जो था वह था, जो है, सो है, जो होगा, पड़ा होगा, मैं जैसे पहले कभी फिक्रों में नहीं पड़ी और बाहरी मौज लिया करती थी, अब क्यों न चिन्ताओं से उसी तरह बेपरवाह रहकर अन्दर की मौज लूं और चिन्ता को बहा दूं?

एक दिन मैं इसी तरह इस सुख में थी, जिसे मैं समझती नहीं थी कि यह क्या है, मुझे अम्मां की बात का ध्यान आ गया, मेरे अन्दर इच्छा हुई कि, "हे प्यारे-के प्यारे ! जिसकी स्मृति में मैं हूं, मेरी माँ को मेरा एक भाई भेज दो, जिससे वह भी सुखी हो जाय। तू जो वृक्षों, पौधों में प्राण भरकर मुझे दिखा रहा है कि वे सभी तेरा स्मरण कर रहे हैं, यदि तू किसी अच्छे से को हमारे घर में भेज दे तो तेरे लिये कोई बात नहीं ?" मुझे पता नहीं, पर मेरे अन्दर पक्का निश्चय था कि मेरी बात 'प्यारे-के-प्यारे' ने सुन ली है और 'अच्छा' कह दिया है। आज मैं भागी भागी घर पहुंची। बापू जी ड्योढ़ी में खड़े थे, मैं उनसे लिपट गई और उनके कान के साथ मुंह लगाकर कहा - "बापू जी ! भैया आ रहे हैं।" पिता जी ने अचम्भित होकर मेरी ओर देखा और कहने लगे, "कौन से भैया, बिटिया?" तब मैंने कहा, "जो आकर तुम्हारी गोदी में मेरी भांति खेलेंगे और तुम्हें सुखी करेंगे।" ये सुनकर वे समझ गये कि मैं कोई भ्रम की बात कर रही थी, पर मेरे वहम पर ही मेरे से लाड़ करते हुए मुझे अन्दर ले गये। मैंने भागकर मां को अंगमिलन करके कहा, "अम्मां ! प्रसन्न हो, भैया जी आ रहे हैं।" वह भी अचम्भित होकर देखने लगी। बापू जी हंस पड़े, पर मैंने अपने स्वभाव के अनुसार ज़ोर से ताली बजाकर कहा, "तुम देख लेना, जो कुछ मैंने कहा है,

सच हो जायेगा, मेरे प्यारे-के-प्यारे ने मुझे 'अच्छा' कह दिया है।" इस समय कुछ हंसी तथा कुछ उदासी-सी ने दोनों को चकित तथा प्रसन्न कर दिया, पर मैं अपने अन्दर प्रसन्न थी। जो कुछ मैंने तुझे बताया है वह हिलोर तो मेरे अन्दर निवास करती थी, पर जो कुछ प्यारे की स्मृति में अब एक और लाभ यह हो गया था कि प्यारे-का-प्यारा मुझे पास-पास दिखाई देता था। कभी-कभी मैं चौंककर देखा करती कि मानो वे आ गये या यों कि मेरी पीठ के पीछे खड़े हैं। कभी-कभी यों लगा करे कि शीश पर बैठे हैं, दीखते नहीं, पर हैं मेरे साथ। कभी-कभी यों लगे कि वे मुझे प्यार करते हैं। तब मैं कांप जाया करती और सोचती कि मैंने तो इनके प्यारे का वध किया है, यह क्यों मुझे प्यार करते दिखाई पड़ते हैं? पर इन कभी-कभी के सोचों ने अब मेरे स्वाद पर बल न डाला और मेरा यह स्वाद अन्त में परिपक्व हो गया, कि प्यारे-का-प्यारा - जिसका किसी स्थान पर होने का पता, प्यारा दे गया था - वह "है" और अवश्य ही है और वह सबसे अच्छा प्यारा, जो और उच्च था - सच्चा था वह सच कह गया है। प्यारे-का प्यारा, "है" अवश्य 'है' और मेरे अन्दर से यह लहरें जो अब उठती हैं, कि वह मेरे साथ है, सचमुच मेरे साथ है। जब मेरे रोम उसका स्मरण कर रहे हैं, वन, तृण, पर्वत, आकाश-पाताल, सभी स्मरण कर रहे हैं तो वह निःसन्देह बिना दिखाई दे सकता है और मेरे पास है। फिर स्वाद आता रहे और अपने-आप ही स्वाद में से प्यार की सुगन्धि आती रहे एक दिन तो इसी वन में इसी मठ के एकान्त स्थान पर बैठे-बैठे मेरे जी ने कहा - "वे तो, जैसे मैं इस मठ में निवास करती हूं, मेरे शरीर में आकर बस गए हैं।"

बात क्या, दिन व्यतीत होते गये, मेरा स्वाद, उस प्यारे की स्मृति और उसकी ओर से प्यार, और कभी-कभी मेरा मन अपने-आप रोने लगता; पर सदैव अन्हीं ध्वनियों में रहना, एक

स्वभाव-सा बन गया। एक वर्ष और व्यतीत हो गया। हमारे घर में सचमुच एक भाई आ गया। भाई के आने से माता-पिता के मन में से मेरे भ्रमशील होने का भय दूर हो गया। बल्कि अब उन्हें मेरे साथ एक और तरह का प्यार हो गया। बापू जी एक दिन कहने लगे - "बिटिया तो देवी हो गई लगती है, इसका सत्कार करना चाहिये।" पर मुझे उनके सत्कार करने में स्वाद न आता। मैंने उन्हें कहा, "मुझे उसी तरह लाड़ किया करो, मुझे तूम्हारे सत्कार में स्वाद नहीं आता ।"

भैया का रंग-रूप अत्यंत सुन्दर था और आंखें, बिलकुल मेरे हाथों द्वारा मारे गये प्यारे की-सी थीं। मैं भाई से बहुत लाड़ करती थी, कई बार लाकर इसी मठ में लिटा देती थी और लेटे हुए की आंखों को देखकर कहा करती - "इसी स्थान पर मुझ मूर्ख ने तीर से बींधकर यह नेत्र देखे थे, इसी स्थान पर यह नेत्र खेलते तथा हंसते हुए फिर से दीख पड़े हैं। हे नयनो ! तुम वही हो जिन्हें मैंने बन्द किया था और फिर मेरी प्रार्थना से आकर खुले हों, या तुम उन नयनों जैसे हो? कैसे भी हो, अब तुम मेरी ओर लाड़ से देखते हो, मुझे देखकर खिलते तथा हंसते हो और मुझे प्यार करते हो, मेरे माता-पिता का हृदय शीतल करते हो, हे नयनों ! तुम धन्य हो ।"

मैंने बाद में समझा कि संसार स्वार्थी है, उस समय मैं इस बात को नहीं जानती थी। पर उस समय भाई के आने की मुझे एक और प्रसन्नता हुई-भाई के जन्म से पूर्व मेरे माता-पिता मेरे प्यार को, जो अदृश्य प्यार के साथ लग पड़ा था, प्रसन्नता से नहीं देखते थे; वे मेरे प्यारे को भिखारी साधु और उसके प्यार को कोई और उसी जैसा समझते थे और चाहते थे कि मैं किसी तरह इस चक्कर में से निकल जाऊं। पर मेरे हृदय के टुट जाने के भय के कारण न तो मुझे जोर देकर समझाते थे और न ही भय देकर रोकते थे, उनके जी में जो मेरे साथ अटूट प्यार था,

वह एक बाधा थी, अन्यथा वे मेरी इस लगन को डंडों के बल से तोड़ देते। अब उनके हृदय की यह पीड़ा भी हट गई। उनके जी में भी 'प्यारे-के-प्यारे' का कोई प्यार उत्पन्न हो गया और उन्हें भी दर्शन की इच्छा हो गई। उनका जी मान गया कि बेटी किसी पूर्ण शक्ति की लगन में है, बावली नहीं जो हंसी-मज़ाक में बात करके भैया आ गये' भाई को ले आती है। जब मैंने उनके मन में प्यारे का प्यार देखा तो वे मुझे पहले की अपेक्षा ज्यादा प्यारे लगने लग पड़े। अब मैं घर में अधिक समय - कुछ मां के पास और कुछ भाई के पास लगाती, क्योंकि अब एक और कौतुक हो गया था। प्यारे की स्मृति मेरे अन्तस में घर कर गई और यों चिपट गई जैसे बेल पौधे से चिपट जाती है। चाहे मैं हंसती, चाहे खेलती, अपने आप स्मरण करती अथवा न करती, प्यारे की स्मृति तो कभी भी नहीं भूलती थी। 'मैं मठ में नैन मूंदकर ही बैठूं तो स्मृति मूझे स्वाद प्रदान करे', केवल यह बात न रही, बल्कि मैं जिस दशा में होती, स्मृति बनी रहती। उसे तो निद्रा भी नहीं भुला सकती थी। अब मैं प्यारे को आवाज़े नहीं लगाया करती थी, पर आवाज़ें मुझे नहीं छोड़ती थीं। इस रंग ने मुझे कुछ और ही स्वाद दे दिया ।

एक दिन अम्मां ने कहा, "बिटिया ! यदि तेरे प्यारे का प्यारा हमारे अभागे परगने में आ जाये हम भी जीवित हो जायें। तेरा प्यार सचमुच कोई अवतार था, हमने उसकी उस समय कदर न समझी, तुझे भी उसकी स्मृति से रोकते रहे, पर अब होश आई कि हम भूल करते रहे हैं। अब जी यही चाहता है कि उस तेरे प्यारे-के-प्यारे के दर्शन हों और उसके चरणों पर झुककर अपनी भूल के लिए क्षमा मांगें।' यों मेरे माता-पिता भी मेरी लगन के विपरीत होने के स्थान पर, पक्ष में हो गये। अब हमारे घर में सभी को दर्शनों का आकर्षण होने लगा। एक दिन मैंने मां को यह बात भी बता दी 'प्यार, यदि परदेश में हो प्यार करने

वाला कभी भी उसको भूल नहीं सकता और इस स्मृति में प्यार का खूब स्वाद होता है और यदि तूम भी उसको अपना प्यारा मान लो और उसका स्मरण किया करो तब तुम्हें बहुत ही स्वाद आया करेगा।' बात यह हुई कि इस तरह सुनकर तथा हृदय में चुभ गई बात से बापू जी और मां जी भी उस 'प्यारे-के-प्यारे' का स्मृति मे लग गए।

एक वर्ष अथवा कुछ अधिक समय व्यतीत हो गया। अब अपने आप मेरे मन से छंद निकला करें और उन वनों में, जिनमें मैं कभी अनजानेपन में तथा बेपरवाह होकर फिरा करती थी अब कभी-कभी कबूतरों की भांति गुटकती और पपीहे की भांति गाती, हंसती और कभी-कभी नैनों से प्यार भरे अश्रु गिराती-फिरती। यह मठ मेरा एकान्त ठिकाना था, जहां पर मैं सवेरे-शाम अवश्य आकर बैठा करती थी। अब यहां पर कभी-कभी बापू जी और अम्मां जी भी आकर बैठा करते थे।

एक दिन मैं जब तड़के ही आई तो मुझे दूर से गाने की आवाज़ आई, मैंने समझा कि मेरे कान बज रहे हैं, या वन को गीतों वाली जिह्वा लग गई है, पर जब मैंने ध्यान देकर सुना तो बड़ा रस भरा स्वर था और बड़ी ही वैराग्य भरी आवाज़ थी। मैं कुछ मुग्ध हुई प्यारे की लालसा में अश्रु गिराती हुई आ रही थी, इस स्वर ने मुझे हिलने तक नहीं दिया। मैं जहां पर थी, वहीं पर रेत के टीले पर बैठ गई। यह कोई गाना था, कोई आवाज़ थी कि वध करने के लिए छुरी थी? यह राग था कि प्राण भर देने वाला अमृत था? मैं स्वाद क्या बताऊं? एक तो रस भरता था, साथ सारे रोम कांपते थे, कंपकंपी होती थी, साथ-साथ वैराग्य भरता था, फिर स्वाद भी आता था। मैंने जो तुकें सुनीं और जिन्हें मैंने कभी न भूला, वे यह थीं -

## आसा महला १

एक न भरीआ गुण करि धोवा ।।
मेरा सहु जागै हऊ निसि भरि सोवा ।।१।।
इऊ किऊ कंत पिआरी होवा ।।
सहु जागै हऊ निसि भरि सोवा ।।१।।रहाऊ।।
आस पिआसी सेजै आवा ।।
आगै सह भावा कि न भावा ।।२।।
किआ जाना किआ होइगा री माई ।।
हरि दरसन बिनु रहनु न जाई ।।१।।रहाऊ।
प्रेमु न चाखिआ मेरी तिस न बुझानी ।।
गइआ सु जोबनु धन पछुतानी ।।३।।
अजै सु जागऊ आस पिआसी ।।
भई ले उदासी रहऊ निरासी ।।१।।रहाऊ।।
हऊमैं खोइ करे सीगारु ।।
तऊ कामणि सेजै रवै भतारू ।।४।।
तऊ नानक कंतै मनि भावै ।।
छोडि वडाई अपणे खसम समावै ।।१।।रहाउ।।२६।।

मैं इसी रंग में बैठी रही और सुनती रही। मैं चाहती थी कि किसी तरह यह बन्द न हो, पर अंत में यह राग बन्द हो गया। मेरा अन्तस पिघल रहा था और नैन छम-छम बरस रहे थे। प्यारे की सूरत आंखों के आगे खड़ी थी। और मैं मिन्नतें कर रही थी कि हे प्यारे जी ! अपने प्यारे से भेंट कराइए[१]।

---

१. जैसा किसी प्रेमी का वाक्य है :-
बह-बहकर नदियों में पानी उतर रहा है, सरकंडों के फूल निकल आये हैं। मेरा प्यारा विदेशों में फिर रहा है। मैं उसके पास किसके हाथों सन्देश भिजवाऊं। आने जाने वाला तो कोई है नहीं, सन्देश कौन ले जाये। यदि कोई उसकी सूचना ले आवे तो मैं उसके चरण धो-धोकर पी लूं अथवा चमेली के फूल की भांति खिल जाऊं
(पंजाबी गीत का अनुवाद)

इस तरह के वैराग्य में मैं रो रही थी। प्यारे के प्यारे की चाह विह्वल कर रही थी कि एक लम्बा, पतला वृद्ध पुरुष दूर से आता हुआ दिखाई पड़ा। मैंने समझा कि कहीं प्यारे-का-प्यारा आ गया है, जब मैंने देखा तो उसके नेत्र तो मेरे प्यारे के साथ मिलते थे और मुझे प्यारा भी लगता था, पर बहुत आकर्षण न हुआ। समीप आकर इसने पूछा "हे वनवासी कन्या ! इस वन में कोई साधु तो निवास नहीं करता ?" मैंने उत्तर नहीं दिया, "जी नहीं।" कोई नया आया हो? उसके प्रश्न के उत्तर में मैंने फिर कहा, "जी नहीं।" फिर कहने लगे, "यह वही वन तो नहीं, जहां पर छ: वर्ष पूर्व राजा की पुत्री ने एक मुसाफिर को चीते के भुलावे में मार डाला था?" मैंने सहमकर कहा- "जी हां, यह वही वन है।" फिर 'वाह' कहकर वह चल दिया। मैंने उससे कहा कि ठहर जाओ; कुछ विनती सुनो। पर वह ठहरा नहीं और शीघ्रता से चल दिया। मैं यहां से उठकर मठ में जाकर बैठ गई। बैठने की देर थी कि मैं बिलकुल इकट्ठी-सी हो गई। वह स्मृति, वह प्यारी स्मृति थी तो अन्दर ही, पर इसमें मेरी चाह तीव्र हो गई। मुझे और प्रकार का स्वाद आने लग पड़ा। प्यारे-का-प्यारा ज्यादा पास दिखाई पड़ने लगा, वह ज्यादा प्यार करता हुआ लगा और अपने आप एक सुगन्धि-सी आने लगी। फिर जी चाहता कि आ जाये तो चरणों पर गिर पड़ूं और वह कहे, "बिटिया ! हम आ गये हैं।" दोपहर तक मैं बैठी रही, पर मुंदे हुए नेत्रों में से भी अश्रुओं का तार चलता रहा। जब रोती-रोती मैं घर की ओर चली तो उस वृद्ध पुरुष को मैंने फिर देखा, वह खोज कर रहा था, जैसे किसी खोई हुई वस्तु की खोज की जाती है, हम भी आपकी सहायता करें?" पर इसके नेत्रों में से अश्रु गिर रहे थे और आप कह रहे थे, "दीदी कभी नहीं भूली।" उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी और अपनी ध्वनि में मगन रहे। जब मैं घर पहुंची तो वहां पर मां रो रही थी। मैंने आकर पूछा, "अम्मां! क्यों रोती

हो?" वह कहले लगी : "बिटिया ! मैं भी भ्रमशील हो गई हूं, आज मेरा कलेजा तड़प रहा है कि तेरे 'प्यारे-के-प्यारे' दर्शन कब होंगे और मुझे उदास देखकर तेरे बापू जी भी, आज पहला दिन है कि इसी लालसा में घर से रोकर गये हैं। देख तेरे भाई की आंखें भी आज कैसी चौंक-चौंककर देखती हैं। भाई ने मुझे देखकर बांहें ऊंची कीं, मैंने उसे उठाकर कण्ठ से लगाया और कहा, "प्यारे भैया ! तू बता तो जिन्होंने तुझे भेजा है, वे कब आयेंगे?" अनजान भोला भाई मेरी ओर देखकर ऊपर को देखने लगा। कुछ मुस्कराया और फिर रोने लगा मैंने कहा, 'हे मेरे मन ! आज क्या है? मैं सवेरे से रो-रोकर पानी-पानी हो गई हूं, प्रसन्न रहने वाली मां रो रही है और पिता जी सारी आयु में पहली बार नेत्रों में से जल गिरा रहे हैं, यह शिशु भी रोता है।' अपने-आप मेरा कलेजा चीरकर एक स्वर निकला, मैं रोई और इस दर्द से गाया कि महल के सभी निवासी रोने लगे –

हे प्यारे ! नैनों ने झड़ी लगा दी है और प्रतीक्षा कर करके हार गये हैं। लालसा करते यह दिन आ गये हैं, अब तो लौटो । हे प्यारे ! आओ और हमारी लालसा पूरी करो और हमें खुले दर्शन दो। हम भूल से मारे हुए अवगुणों वाले तुम्हारे द्वार पर गिरकर पुकार कर रहे हैं।

आज का सारा दिन इसी तरह व्यतीत हो गया पर वैसे मेरे अन्दर शान्ति तथा सुख था। एक सुख था, इस सुख में स्मृति लहरें मारती थीं, इन लहरों में से एक ऐसी तीव्र इच्छा उठती थी कि नेत्रों में छम-छम झड़ी लगाकर फिर चुप, शान्ति सुख अधिक ठंड तथा रस बंध जाता था, फिर बिजली की तरह लालसा का फर्राटा बजाता था और रोंगटे खड़े होकर सिर से नीचे से कुछ उतरता था जो नेत्रों से टपटप गिरता था। सायंकाल हो गया और मैं आज वन में भी नहीं गई। शिखर छत पर और चन्द्र की चांदनी और मीठी-मीठी पवन में इसी दशा में बैठी रही। रात

गहरी हो गई । भीनी रैन तथा ओस की फुआर पड़ती। धुले हुए आकाश में तारा मण्डल से सुशोभित शरद चांदनी द्वारा ठण्डी रात उस लालसा में निद्रा को निकट न आने देती। मैं इसी सुख तथा वैराग्य में बैठी रही और रात के पहर व्यतीत होने लगे। कभी आनन्द का झोंका, कभी प्रेम की हिलोर, कभी शान्ति का ठहराव, कभी चाह और कभी चाव, कभी बहाव, तब पता चला जब सवेरा हो गया। किसी ने नीचे से आकर कहा - एक फकीर आया खड़ा है, कहता है, "बता दो कि तुम्हारे 'प्यारे-का-प्यारा' मैं आ गया हूं।" अम्मा यह सूचना लेकर दौड़ी हुई मेरे पास आई और कहने लगी, "उठ बिटिया ! प्यारे-का-प्यारा आ गया है।" मैं सुनकर उठ न सकी और पूछा, 'कहां पर है?' मां ने उत्तर दिया, "नीचे खड़ा है और सन्देश भेजा है कि, 'मैं आ गया हूं' चल हम आप चलकर उसे लायें।" मैंने हंसकर कहा, "अम्मां ! कोई कंगला मज़ाक करता है या छलिया हमें छलता है। भला सम्राट भी कभी इस तरह चलकर आते हैं ? अम्मां ! वे द्वार पर कब रुकते हैं? जो छाती को चीरकर अन्दर चले जाते हैं, उन्हें द्वारपाल कब बाधा डाल सकते हैं? फिर मेरे हृदय में कसक नहीं उठती, अपने आप विवश होकर उठकर नहीं भागे। प्यारा तो चुम्बक की भांति खींचेगा।' मां चकित होकर कहने लगी, 'बिटिया ! कहीं भूल न हो।' मैंने उत्तर दिया, 'जा उससे उसका नाम पूछना और यह भी पूछ कि क्या कहता है?' दासी गई और सूचना लाई कि वह अपना नाम 'वाहिगुरू' बताता है और कहता है कि 'उद्धार करने के लिये आया हूं।' मैंने कह दिया कि 'जा, उसे कह दे कि अभी अवकाश नहीं, ड्योढ़ी में बैठे, चार घड़ी तक हम नीचे आयेंगे।' यह सन्देश सुनकर वह प्रतीक्षा में बैठ गया, हमने भोजन भेजा, उसने भोजन किया, हमने पांच मुद्राएं भेजीं उसने स्वीकार कर लीं। फिर हमने कहला भेजा, 'आज नहीं कल आना!' यह सुनकर वह सत्य वचन

कहकर चला गया। अब मां भी हंसने लगी और कहने लगी, 'बिटिया ! तेरे आकर्षण का तार सच्चा जिससे तुझे प्यार की सूझ हो रही है। यह तो घड़ी का तमाशा था, पर मुझे क्रोध आता था कि इस छलिये को कैद में डाल दूं, पर फिर कहती थी कि दोष मेरा है। जो मेरी भांति किसी अदृष्ट आकर्षण में बहते उन्हें कौन मज़ाक करता और कौन उनसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के यत्न बहाने नहीं करता ।'

दोपहर को पिता जी आये तो खबर लाये कि वह तो कोई रमता साधु था, यहां पर आकर किसी दासी से तुम्हारी कथा सुनकर उसने छल किया है। जिस सराय में उसने डेरा डाला है, वहां का सरदार आकर सारा समाचार बता गया है और अब वह हवालात में है। अम्मां मेरे अंगों से मिलकर कहने लगीं-'वहमी लड़की! तू प्यारे-के-प्यारे को अवश्य ही मिलेगी।' अब मेरी चीख निकली और प्यारे-के-प्यारे को मिलने की लालसा और भड़क उठी। उस ठग को तो मैंने मुक्त करवा दिया, पर घर में प्रतीक्षा तथा दर्शन की बातें होने लगीं। सारा दिन हम सारे वैराग्य में बैठे रहे और इसी तरह की वार्तालाप करते रहे। जब सूर्य अस्त होने लगा तो मैं वन को चल दी। इस समय दो और मनुष्य देखे जो एक वृक्ष के नीचे बैठकर गा रहे थे। इनका गाना बहुत आकर्षक था, जो कुछ वे गाते थे, वह यह था -

## राग सूही महला १

मनहु न नामु विसारि अहिनिसि धिआईऐ ।।
जिऊ राखहि किरपा धारि तिवै सुखु पाईऐ ।।१।।
मैं अन्धुले हरि नामु लकुटी टोहणी ।।
रहऊ साहिब की टेक न मोहै मोहणी ।।१।।रहाऊ।।
जह देखऊ तह नालि गुरि देखालिआ ।।
अंतरि बाहरि भालि सबदि निहालिआ ।।२।।

सेवा सतिगुर भाइ नामु निरंजना ॥
तुधु भावै तिवै रजाइ भरमु भऊ भंजना ॥३॥
जनमत ही दुखु लागै मरणा आइकै ॥
जनमु मरणु परवाणु हरि गुण गाइकै ॥४॥
हऊ नाही तूं होवहि तुध ही साजिआ ॥
आपे थापि उथापि सबदि निवाजिआ ॥५॥
देही भसम रुलाइ न जापी कह गइआ ॥
आपे रहिआ समाइ सो विसमादु भइआ ॥६॥
तूं नाही प्रभ दूरि जाणहि सभ तू है ॥
गुरमुखि वेखि हदूरि अंतरि भी तू है ॥७॥
मैं दीजै नाम निवासु अंतरि सांति होइ ॥
गुण गावै नानक दासु सतिगुरू मति देइ ॥८॥३॥५॥

जहां पर में खड़ी थी वहीं पर बैठ गई। यह गाना भी बन्द हो गया, पर मैं हिल न सकी। तब हिली जब यह दोनों मनुष्य, जो अत्यन्त शीतल तथा सुखी लगते थे, आये और पूछने लगे, 'बिटिया ! तू किसी ऋषि की देवी है और इस वन में तप करती है?' मैंने उत्तर दिया, 'जी नहीं, मैं साध्वी नहीं हूं।'

'भला कोई सन्त यहां पर आये हैं?' मैंने उत्तर दिया, 'जी नहीं।'

'क्या यह वही वन हैं जहां पांच-छः वर्ष पूर्व, किसी परदेशी का राज्यकन्या भूल से वध कर बैठी थी?'

मैं कांपी, नेत्रों में जल भर आया, सिर झुकाकर उछलते हुए कलेजे से मैंने कहा; "जी हां, पर आप आज्ञा कीजिये, आप क्या चाहते हैं?" "और कोई इच्छा नहीं" कहकर वे चल दिये। मैं जाकर मठ में बैठ गई। पिछली स्मृति ने आज मुझे खूब रूलाया। यह भी समझ में न आता कि यह तीन पुरुष क्या पूछते थे, कौन थे और किसकी खोज करते थे? बहुत रात व्यतीत हो गई, मुझे कोई सुध न रही, कहीं से यह आवाज़ आ रही थी-

आवहु सजणा हउ देखा दरसनु तेरा राम।
घरि आपनड़ै खड़ी तका मै मनि चाऊ घनेरा राम।।
*(सूही महला १)*

मैं आज घर को जाना भी भूल गई थी। बापू जी को चिन्ता लग लग गई; डोली, दासियां तथा सवार, उलकाएं साथ लेकर मेरी खोज करते हुए मुझे घर में ले जाने के लिये आये। मेरे बिना जाने कुछ लोग पिता जी की मुझसे दूर रहकर मेरी रक्षा किया करते थे, वे मुझे वन में अकेला छोड़कर डेरे पर नहीं गये थे, रात हो जाने के कारण आसपास ही छिपकर रक्षा कर रहे थे। अब मैं घर मैं पहुंची और उत्कंठा ने और तीव्र रंग पकड़ लिया। नये मिले लोगों का समाचार मैंने माता-पिता को बताया। हम सभी चिन्ता में थे और दुखी थे।

रात को हम तीनों व्यक्ति इन तुकों का प्रेम-सहित पाठ करते रहे। तड़का होते ही मैं मठ को चली आई, मेरी अम्मां तथा बापू जी भी मेरे साथ आये कि वे वन में नये व्यक्तियों के मनोहर गाने सुन सकें। आगे मेरे मठ से थोड़ी दूरी पर चार व्यक्ति खड़े होकर उत्तर की ओर देख रहे थे और गा रहे थे –

हम घरि साजन आए।। साचै मेलि मिलाए।।
सहज मिलाए हरि मनि भाए पंच मिले सुखु पाइआ।।
साई वसतु परापति होई जिसु सेती मनु लाइआ।
अनदिनु मेलु भइआ मनु मानिआ घर मंदर सोहाए।।
पंच सबद धुनि अनहद वाजे हम घरि साजन आए।।
*(रागु सूही महला १ छंतु घरू २)*

हम पत्थर की मूर्तियों की भांति खड़े के खड़े रह गये। जब आंखें खोलीं तो यह चारों के चारों लुप्त थे। हम मठ के बाहर चबूतरे पर आकर बैठ गये। एक क्षण के पश्चात् मेरे कलेजे में एक जोर की कसक-सी उठी, यों जैसे कि कोई मुट्ठी भरकर

कलेजा निकालकर ले जाता है। शरीर झूठा हो गया, अपरिचित हो गया, "मैं शरीर नहीं" इस समय मुझे दीख पड़ा, प्रत्यक्ष हो गया कि "मैं शरीर नहीं हूं।" मेरे अन्दर से विवश ही निकल गया, 'अम्मां ! प्यारे का प्यारा आ गया। ' तब फिर नेत्र मुंद गये, होश नहीं रहा, न जाने क्या हुआ? माता-पिता को मैंने चौंकते हुए देखा है, फिर न जाने क्या हुआ ?

जब मेरी आंखें खुलीं, मेरा सिर किसी अत्यन्त प्यारे के चरणों पर पड़ा था; मेरे नैन उन पर अश्रु गिरा रहे थे, मेरे सिर पर कोई हाथ फेर रहा था जो अत्यन्त सुख प्रदान कर रहा था, मेरा जी इतना सुखी था कि सिर को उठा नहीं सकती थी। इस गहरे प्यार वाले हाथ ने मेरा सिर उठाया, जब मैंने दृष्टि भरकर मुखड़े की ओर देखा तो एक झलक-सी पड़ी और बिजली की भांति चकाचौंध हो गई। मेरा सिर फिर गिर पड़ा और चीख-सी निकल गई, 'प्यारे-का-प्यारा ।'

उस सुख तथा आनन्द वाले हाथों ने मुझे फिर उठाया, मुझे बैठाया। मैं फिर चेहरे की ओर नहीं देख सकी। अम्मां ने कहा-'बिटिया ! प्यारे के प्यारे जी आ गये हैं, देख।'

मैं क्या देखती ! कौन आ गये? प्यारे के प्यारे जी आये कि मेरे प्राण आ गये, जीवन आ गया, आत्मा आ गई। उन पवित्र तथा प्रेम भरे हाथों में पहला विचार मुझे यह आया कि यह प्यारे का प्यारा आप है कि प्यारा आप है। मेरे नैनों में फिर जल भर आया, सिर फिर चरणों पर झुक गया, पर वे मेरे सिर पर हाथ फेर फेरकर मुझे प्यार करते थे। मैंने कहा कि यह सचमुच मेरे प्यारे को प्यार करते थे जो उसके लिये मेरे साथ इतना सुन्दर प्यार करते हैं। मैं उस समय क्या करती ? कुछ समझ में नहीं आता था। शरीर को काटती, टुकड़े-टुकड़े करती ? टुकड़े-टुकड़े करके न्योछावर करके अग्नि में डालती जाती? मन तन बलिहारी करती? जो होता उसे लुटा देती ? मैं धन्य हो गई, मैं जो

पापिनी, हत्या करने वाली थी, अब मुझे प्यार किया जा रहा था। जिनके प्यारे को मैंने बाण मारा था वे आकर मुझे प्यार कर रहे थे! आश्चर्य था कि अति आश्चर्य !

मैंने रोकर कहा, "हे मेरे प्यारे के प्यारे !" पर कण्ठ रुक गया और मैं काफी समय तक रोती रही। फिर साहस बटोरकर मैं बोलने लगी पर कण्ठ फिर रुक गया। इस समय कोई ईश्वरीय राग छिड़ पड़ा और यह ध्वनि हुई –

आवहु मीत पिआरे।। मंगल गावहु नारे।।
सचु मंगलु गावहु ता प्रभु भावहु सोहिलड़ा जुग चारे।।
अपनै घरि आइआ थानि सुहाइआ कारज सबदि सवारे।।
गिआन महा रसु नेत्री अंजनु त्रिभवण रूपु दिखाइआ।
सखी मिलहु रसि मंगलु गावहु हम घरि साजनु आइआ।।२।।

*(सूही महला १)*

जब यह ध्वनि बन्द हुई तो अम्मां ने मुझे झंझोड़कर कहा, "बिटिया ! 'प्यारे के प्यारे' की सेवा शुश्रुषा कर। दूर से आये हैं, स्नान, जल, अन्न।" यह सुनकर मेरा कलेजा फिर कांपा, हाय मैं सदैव भूलंती ही रही, मैं अब भी अपने ही स्वाद में पड़ी हूं, प्यारे जी के सुख की ओर ध्यान नहीं दिया। हृदय को चोट लगकर दिल कड़क सी आवाज करके टूटा और मैं बेसुध होकर धड़ाम से गिर पड़ी। मुझे जब बेसुधी से होश आया तो कलेजे को फाड़कर यह आवाज निकली – "हे पापियों से प्यार करने वाले ! हे अपराधियों का उद्धार करने वाले ! हे हत्यारों को प्यार द्वारा सच्चा बनाने वाले ! हे अपने सुख मन्दिरों का त्याग करके वनों में कीटाणुओं पर दया करने वाले ! हे विशुद्ध प्यार तथा दया के स्वरूप ! मेरे जैसी पापिनी, भूली हुई तथा अपने सुखों की प्यारी पर दया कर, क्षमा कर, तू क्षमा करने वाला है, मैं भूलने वाली हूं, तू विशुद्ध दया है। हे प्यारे के प्यारे ! मैं नहीं, मैं टूट गई हूं, मैं मर चली हूं, मैं गई, ओह मैं मरी" कहती हुई मैं धड़ाम से फिर चरणों पर गिर पड़ी, पर हुआ क्या ? मैं शरीर न रही। शरीर

चरणों पर पड़ा था और मैं आश्चर्यर्यित होकर क्या पड़ी देखती थी कि मैं शरीर से बाहर निकल कर खड़ी हूं और क्या देखती हूं? सारी सुन्दरता, सारा प्यार, सारा रस, सारा आनन्द, एक तार से में पिरोया पड़ा है, जिसका मुझे अब पता है कि वह सुरत का तार था। सारे सुन्दर, सभी रसिक, सभी प्यारे, सभी आनन्द लेने वाले उसमें एक रूप होकर झलक रहे थे। मैं देख रही थी, वे दीख रहे थे, यह कहना भी असत्य है। वे भी देखने वाले और मैं भी देखने वाली ही थी, पर फिर तमाशा देखो कि सभी एक रूप, अन्य कोई दिखाई ही न देता, पर फिर सभी झलक भी दें। मैं सबके साथ अभेद, एक रूप, फिर कुछ भिन्न, दोनों रंगों में रस, रस में प्रेम प्रेम में आनन्द और मैं सारी स्वयं आनन्द। मैं क्या बताऊं कि क्या थी? जिह्वा क्या कह सकती थी? जैसे एक वस्तु में दूसरी वस्तु समा जाती है और भिन्न नहीं रहती, पर फिर रस रह जाये, एकता हो, पर जीवन नष्ट न हो, दूरी तथा अन्तर मिल जाये पर स्वच्छ आपा न मरे। यही दशा होगी जो 'तू आत्मा है' प्यारे ने जब मुझे कहा था और मैं सुनकर डरी तथा कांपी थी, तब मुझे क्या पता था कि एक कीटाणु ने गुलाब के फूल पर पहुंचना है और तितली बनकर सुन्दर हो जाना है। फिर अब मैंने क्या देखा कि इसी सुरत का एक नीचे लटकता हुआ तार है जिसमें सारा संसार गुंथा पड़ा है, जो भिन्न-भिन्न लोक तथा शरीर थे सभी एक ही तार में गुंथे हुए थे। यह और कौतुक था जो अत्यन्त आश्चर्यजनक था। फिर एक झलक पड़ी। मैं एक आनन्द रूप थी, सर्वानन्द थी। फिर न जाने क्या था, अज्ञानता की-सी दशा थी, जहां से लौटने पर आपा देखने वाला आभासित होता था, हैं ? साक्षी ।

फिर मैंने क्या देखा कि मेरी निद्रा खुली है और मैं उठकर बैठी हुई हूं, मेरा शरीर फूल से भी हलका था, और मैं बीच में पृथक थी। प्यारे के प्यारे जी मेरी ओर देखकर मुस्कराये और कहने लगे, "बिटिया ! तू आत्मा है कि नहीं ?" अब यह

सुनकर मुझे भय नहीं लगा। धन्यवाद से नैन भर आये और टप-टप अश्रु बहे। आप कहने लगे, "क्या तू आत्मा है?" मैंने बड़े प्यार तथा सत्कार सहित कहा, 'सच्चे स्वामी ! मैं कुछ भी नहीं, तू सब कुछ है, हां, मैं पापिनी तेरे प्यार की अनुग्रहीत तेरी हूं, मुझे अपनी बना ले। मैं क्या कहूं? कुछ नहीं हूं! मुझे अपने चरणों में समा ले और मुझे भिन्न मत कर, वह वियोग दे गया है, अब तुम न वियोग देना। मैं मूर्ख आत्मा का सन्देश सुनकर रोया करती थी। आज तेरे कौतुक देखकर चकित हुई हूं। मैं अपनी बुद्धि पर क्या भरोसा करूं, मेरी बुद्धि तुच्छ है, मेरा प्रकाश धुंधला है, मेरा मार्ग मुझे कंपाता है और सबसे डरावनी मैं आप हूं। चरणों में-हां जहां पर मुर्दा चर्म के जूते का स्थान है-इस मुर्दा मांस को भी-वहीं पर समा ले।"

मैं यह सब कुछ बड़ी कठिनता से बोल सकी, मेरा कण्ठ रुकता था, नेत्र बरसते थे, रोंगटे खड़े हुए, हल्का-हल्का सा पसीना आने लगा, बीच-बीच में प्रसन्नता तथा नम्रता के साथ यह लहर भी बजती : प्यारे चरणों में निवास कर लिया है और अपने शरीर का त्याग करके वहां पर निवास करने लगी हूं।

मेरे पिता जी ने अब करबद्ध विनय की, "हे वाहिगुरू जी ! अब कृपा करके दास का गृह पवित्र कीजिए और इस कूकर की ओर से भोजन की सेवा स्वीकार कीजिए।" प्यारे के प्यारे जी यह सुनकर कुछ चौंके और कहने लगे, "वाहिगुरू नाम तो मेरे प्यारे का है।" मैं यह सुनकर तनिक-सी चौंक उठी कि हैं तो प्यारे के प्यारे, इन सुन्दर जी ने यह क्या कहा है? यह कैसी और कठन बात कह रहे हैं? मैं अभी सोच ही रही थी कि आपने फिर कहा, "वाहिगुरू तो मैं उसे कहता हूं जिसे मैं अपने आप से भी अधिक प्यार करता हूं।"

अब मैं और डरी कि कहीं पहले की भांति किसी और प्यारे की आशा बांधकर यह 'प्यारे के प्यारे' जी भी चले न जायें। पर वह अन्तर्यामी कृपालु अपने आप ही कहने लगे, "बिटिया ! यह

नई बात नहीं, तुझे अच्छे लगने वाले उसका नाम तुझे परमात्मा भी बता गये हैं, जो तू डरती थी कि छिपकर तेरे साथ रहता है। वह तार जिसमें तूने आश्चर्यजनक कौतुक के साथ सब कुछ गुंथा हुआ और रूप अरूप देखा है, उसका नाम सुरत है, उस सुरत का सुरता वाहिगुरू है। उसका रूप अरूप रंग भेस कोई नहीं, पर वह सबके अंगसंग है। सबके अपने आपके आपा का भी दृष्टा है, वह यों मिलता है जैसे अब तुमने उसके चरणों को परसा है वह 'वाहिगुरू' नाम उसी का है; तुम उसे याद करती हो, वह तुम्हारी स्मृति के कारण बंधकर तुम्हें अपनी ओर खींचता रहा है। यह जो आनन्द तुझे अन्दर से आता है, यह उसका है। वह सदैव प्रेम है–

**'आपे प्रीति प्रेम परमेसुरु करमी मिलै बड़ाई'**

*(प्रभाती महला १)*

और वह मिलता भी प्रेम से ही है। वह सर्वव्यापक है, अन्दर बाहर है। अन्दर होने के कारण उसे बाहर नहीं खोजना पड़ता। प्यार सहित स्मरण करते ही अपने आपको दिखा देता है। उस प्यारे के साथ लगे रहने से ही जीवन है और उससे बिछुड़ना मृत्यु है। इसी संयोग को कहा गया था कि "तू आत्मा है।" यह वास्तविक जीवन है, संसार इस जीवन से बाहर है, इसीलिये दुखी है। इस जीवन के बिना जो जीवन है, वह जीवन नहीं।" यह कहकर आपने बाईं ओर देखा और कहा, "मरदाना ! रबाब बजा, वाणी आई है"। आप तो कहते ही लवलीन हो गये और मरदाना ने एक यन्त्र बजाया जो सरोद के साथ कुछ मिलता–जुलता था। मुझे बाद में पता चला कि इसका नाम रबाब है और प्यारे के प्यारे जी की ही निर्मित है। यह साज़ इतना सुरीला था कि बजते ही मन एकाग्र हो गया। अत्यन्त प्यारे स्वर में गायक ने यह गायन किया –

**हरि बिनु किऊ जीवा मेरी माई ।।**
**जै जगदीस तेरा जसु जाचऊ मैं**
**हरि बिनु रहनु न जाई ।।१।।रहाउ ।।**
**हरि की पिआस पिआसी कामनि देखऊ रैनि सबाई ।।**
**स्त्रीधर नाथ मेरा मन लीना प्रभु जानै पीर पराई ।।१।।**

*(राग सारंग असटपदीआ महला १ घरू १)*

जब समाप्ति हुई तो पिता जी ने फिर आपसे घर चलने के लिये विनती की। प्यारे के प्यारे जी ने आज्ञा की कि हम इस मठ में ही अच्छे हैं, जहां पर प्यारी पुत्री वाहिगुरू को आवाज़ें लगाती रही है, परन्तु मेरे थिरकते हुए अधरों की और माता-पिता जी की करबद्ध विनती फिर हुई और दीन दयालु जी ने स्वीकार कर ली और हम पापियों के राजसी-गृह में चरण पड़े।

हमारे लिये अब चाव, प्रसन्नतायें, आनन्द, मंगल, विनोद आश्चर्यजनक रंगों के खुल गये। मैं क्या करूं, आज हमारा जीवन ही और प्रकार का हो गया। प्यारे के प्यारे जी की सेवा के रंग में जो रस था उसका हमें ही पता है। उस रंग का वर्णन बहुत ही कठिन है।

आज दिन तक मुझे क्या पता था कि क्या हो रहा है? मुझे कौन खींच रहा है ? मैं किधर जा रही हूं ? अब सब पता चला। यद्यपि इन सूचनाओं के बिना जो बीज मेरे अन्दर उत्पन्न हुआ और पनप उठा था, वह ठीक था, पर पता लगने पर कुछ और धैर्य तथा भरोसे का रंग बंध गया। मेरे प्यारे के प्यारे श्री सतगुरू नानक देव जी थे। हां, एक दिन किसी मूकता में प्यारे जी के मुंह से भी यह नाम निकला था, पर मुझ बेसमझ को उस समय कुछ पता न चला ।

अब मुझे भी पता चल चुका था कि रबाब बजाने वाला मरदाना उनका निजी सेवक था जो श्री गुरू जी का गायक था। दो चार दिन पहले ही जो अच्छे लगने वाले मनुष्य मुझे वन में

गाते अथवा पता पूछते मिले थे, वे भाई भागीरथ, भाई सीहां और तारा जी थे जो श्री गुरू जी के प्यारे सिख थे, जो उनके परदेश से घर आने पर दर्शन करने के लिये आये थे। पर उन्हें पता चला था कि आप चिनाब नदी की ओर चल दिये हैं। वे सूचना प्राप्त करने के लिये कुछ पहले ही पहुंच चुके थे । इस स्थान पर, जहां पर वे पहुंचे वे जानते थे कि सतगुरू जी पहुंचेंगे क्योंकि तिलोका - मेरे प्यारे - की मृत्यु पर वैराग्य की वार्ता गुरू जी के सिखों तक पहुंच चुकी थी और दीदी (गुरू नानक जी की बहन) का अनुमान था कि सतगुरू जी, जो चिनाब नदी की ओर गये हैं, अवश्य ही राजकन्या का उद्धार करने के लिये जायेंगे। दीदी जी के अनुमान और समाधि - दर्शन ने भी सिखों को इस बात का पता दिया था।

यह सभी प्यारे के दर्शनों के लिये आये थे और गुरू जी जब वापिस लौटें तो यह उनके आगे विनती कर सकें कि दीदी जी घर पर आकर दर्शन देने के लिये प्रार्थना करती हैं। श्री गुरू जी यहां पर प्यारे सिख के दिये हुए वचनों को पूरा करने और हमारा उद्धार करने के लिये आये थे और वह निरंजनी ज्योति जिस पर से मैं सारी की सारी न्योछावर हूं, प्यारे सिखों से कहने लगे; दीदी नानकी बहन है, पर यह भाग्यशील भी पुत्री होकर दिखाई दी है। अब हमने कुछ दिन इसके पास व्यतीत करने हैं, फिर चलेंगे और दर्शन तो दीदी जी को आज ही हो जायेंगे। मैं इस गरीबनिवाज़ की दयालुता के प्यार को, जो उस उद्धारकर्ता ने निमानों तथा ग़रीबों के साथ किया है, देख - देखकर मुग्ध हो रही थी। मैं सतगुरू जी कै अनुग्रह को देख - देखकर बलिहारी होती रही और धन्यवाद में अश्रु टपकते रहे ।

अब मुझे पता चला कि हमारे परगने में फिरणा और जोध नामक गुरुमुख प्यारे तथा और अनेकों सिख मेरे सच्चे पिता श्री नानक देव जी द्वारा उबारे गये हैं और उस निरंजनी ज्योति

वाहिगुरू के प्रेम में मग्न होकर निवास करते हैं। कौन जानता था कि ऐसे हीरे हमारे राज्य में छिपे हुए हैं । इन प्रेमियों का अपना सत्संग था और इनसे मिलने के लिये, मुझे अच्छा लगने वाला मनुष्य हमारे नगर में आया था । निर्जन स्थान देखकर अपने निरंकार के प्यार यथा प्रेम में मस्त होकर बैठा था, जब मेरे पापी हाथों ने उसे बींध दिया था। उस गुरू के संवारे हुए, गुरू के प्यारे का नाम भाई तिलोका था। उस वृद्ध पुरुष भाई भागीरथ का वह पुत्र था। श्री गुरू जी इस प्यारे से बहुत प्यार करते थे और इसे आपने बाल्यकाल से ही पूर्व पुरुष बना दिया था। जिस दिन मेरे इन हाथों ने बाण मारा था उस चंगे की उस समय बाईस वर्ष की आयु थी । हां, आज पता चला कि जिसे मैंने मारा था , वह मुझे आत्मा के जीवन में जीवित कर गया है। जिसके पुत्र को मैंने विलग किया था, वह आज मुझे पुत्री की भांति देख रहा है और उसे ईश्वर की आज्ञा कहता है और मेरे अवगुणों पर ध्यान नहीं देता। जिस सतगुरू के लाडले सिख को मैंने उसकी युवावस्था में ही बींध दिया, वह पतित पावन मुझे 'बिटिया' कह रहा है। तभी तो यह गुरू के सिख एक दूसरे को भाई-भाई कहकर बुलाते हैं। प्रेम तो सारा इन्हीं के पास है, द्वेष तो कहीं पास नहीं फटकता, इनके घर में ही अपरिमित क्षमा है, यह सत्संग धन्य है।

मुझे अपने रंगों में मुग्ध हुई को क्या पता था कि जगत में दुख भी कोई वस्तु है। अब पता चला कि सृष्टि-भार से दबी पड़ी है, सारा देश हाहाकार कर रहा है, पाप की काली रात छा रही है और उस अन्धकार को मिटाने के लिये सतगुरू देव जी आये हैं, जिन्होंने ऐसे गुरुमुख प्यारे अत्पन्न किये हैं, जो संसार का उद्धार करते हैं। सारे नगर में गुरू के आगमन की तथा मेरी कथा सविस्तार फैल गई। भाई तिलोके का परिश्रम तथा गुरू नानक जी की अनुकम्पा का वह साया पड़ा कि सारा नगर गुरू का सिख बना ।

वाह - वाह, प्यारे सतगुरू जी हमारे घर में आये हैं। माता - पिता तो वहीं करते जो कुछ बड़ों के घर आने पर किया जाता है। मैं मूर्ख, जो भूली रही और हत्या करती हुई उद्धार हो गई और फिर से सनमानी गई, हां मैं अमोल, जन्म से बेपरवाह, बेखबर, मूर्ख, अनजान क्या जानती थी कि इतने बड़े दाता का स्वागत पूर्ण रूप से कैसे किया जाता है और प्यारे के प्यारे की प्रसन्नता कैसे प्राप्त की जाती है और सत्कार कैसे किया जाता है। मेरे तो मन में जो कुछ भी आया प्यारे सतगुरू जी से कह देती थी। मैंने करबद्ध प्रार्थना की कि हे त्राणकर्ता जी ! मुझ मूर्ख को कुछ अक्ल नहीं, मेरे सभी लोग कहते हैं कि आज बड़ी खुशी की जाये, मैं क्या खुशी करूं ? अनजान हूं, समझ नहीं सकती। मुझे यह दान दीजिये कि मुझे फिर मान विस्मृत न हो। यह जो नाम की अनुकम्पा हुई है और अन्दर सत्य होकर लग रहा है, यह सदैव मिला रहे। एक तो मुझे यह प्रसन्नता लगती है। मुझे यह दान दीजिए कि इस अभागय पर अब सौभाग्य हो गई। नगरी में अपने पवित्र हाथों द्वारा धर्मस्थान की नींव डालिये; जहां पर आपके प्रेमियों का सम्संग हुआ करे और यह दया भी कीजिये कि नगर के लोग जो मेरी भांति भोले तथा अनजान आपकी शरण में पड़कर सिख मत के मार्ग पर चलकर उभर जायें। दूसरी प्रसन्नता तो मुझे यह लगती है।"

प्यारे त्राणकर्ता जी मेरी प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हुए। वे दासों के सम्मान तथा अनाथों के त्राणकर्त्ता थे, आपने उल्लास सहित धर्मस्थान कि नींव डाली। जहां पर धर्मस्थान की नींव डाली। जहां पर धर्मस्थान का निर्माण होना था, वहां बैठकर सभी प्रेमियों को नामरूपी अमृत पिलाया और सत्य के मार्ग पर चला दिया। सारा दिन इसी तरह जीवनदान देकर प्यारे सतगुरू जी ने नगर का उद्धार किया। सायंकाल 'सोदर' नामक वाणी का कीर्तन होने लगा। फिर वह आरती श्री गुरू जी ने स्वय पड़ी, जिसे सुनते ही

आत्मा की लहर अपने आप में ले जाती है। हे अतिथि पथिक ! यह वह स्थान है जहां पर प्यारे जी शहीद हुए थे, जहां पर मैंने प्यारे जी की वर्षा पर्यन्त आराधना की थी, जहां पर सतगुरू नानक देव जी आकर विराजमान हुए थे और जिसके आगे वाले चबूतरे पर सतगुरू जी के निवास समय से ही बाद में कीर्तन होता रहा।

श्री गुरू जी कार्तिक और मार्गशीर्ष के दो मास हमारे नगर में ही रहे, परगने तथा आसपास के गांवों में दूर-दूर तक "धन्य श्री गुरूनानक; धन्य श्री गुरू नानक" हो गया। बड़े-बड़े अधम जीवों का उद्धार हुआ। अब आपको स्वयं किसी और धरती का उद्धार करने के लिए जाना था, मेरा प्यार यह कब सहन कर सकता था कि स्वयं बिछड़ जाएं ? पर अब मेरे प्यार का आकाश तथा सीमाएं ऊंची हो गईं थीं। आपका अवतार संसार के प्राणियों के लिए हुआ था और मुझे यह लगता था कि आपकी प्रसन्नता में प्रसन्न, और आपकी आज्ञा में उपस्थित होकर मेरा यह सत्कार वाला प्रेम हो सकता है। जी को टोट लगते और कलेजे में बाण लगते इस उच्च भाव ने मुझे पहले दिनों के सीमाबद्ध प्यार में नहीं दबाया। मैं प्रसन्न थी और यह प्रार्थना करती थी[१] -

हे सतगुरू ! जिस मार्ग पर आप जा रहे हैं, उसी मार्ग पर फिर लौटकर आना। आप जब आंखों से ओझल हो जाऐं तो आपका मेरे हृदय में अवश्य ही निवास हो। जो स्मृति आपने प्रदान की है, उसे आप ही निभाना - हमें आप कभी एक क्षण-मात्र भी न भुलाइयेगा ओर अपने चरणों में रखना। यदि हमारी स्मृति में कुछ कमी हो तो आप ही उसे खींचकर रखना। यदि आज आप जा रहे हैं तो फिर लौटकर भी कभी चक्कर लगाना। आप हम भटकने वालों और नीचों से कभी भी आंचल मत छुड़ाना ।

---

१. लेखक की कविता का अनुवाद प्रस्तुत है।

इस तरह के प्यार विरह के हमारे रंगों में सतगुरू जी ने जाने की तैयारी की। जाने से एक दिन पहले मेरे विवाह की बात पिता जी ने सतगुरू जी के आगे प्रार्थना की। जब आप जी ने कृपा-भरे नेत्रों द्वारा मेरी ओर देखा तो मैं चरण पकड़कर रोने लगी, "हे अन्तर्यामी जी ! संसार की अग्नि से रक्षा कीजिए !"

आपने कहा, "हमने अग्नि में जल रखा है, और बन्धन में मुक्ति रखी हे, गृहस्थ में निर्वाण का ढंग सिखाने के लिए आये हैं।" मैंने कहा, "सत्य वचन, जो आपकी आज्ञा है वही मेरा जीवन है।" तब आपने कहा, "गृहस्थी वाहिगुरू जी तक पहुंचे। 'वाहिगुरू का प्यार तथा 'गृहस्थ' दोनों कैसे निभें, इस बात को करके दिखाने के लिए, हमने 'गृहस्थ उदास' का मत चलाया है। गृहस्थ करे[1] वह बुरा है और जो कोई हठ भेस तथा दिखावा करके नहीं पर स्वाभाविक ही गृहस्थ न करे और साईं के प्रेम में रंगा हो, तो उसे हम बुरा भी नहीं कहेंगे। पाखण्ड बुरा है, प्रत्येक दशा में बुरा है। दिखावा प्रत्येक रूप में बुरा है। कपट को भूलकर भी नहीं करना, अन्त में जीव को हिसाब देना पड़ जाता है ।"

फिर आप मेरे पिता जी की ओर देखकर कहने लगे -"इस लाड़ली बच्ची को दु:ख मत देना इसके सिर पर वाहिगुरू का हाथ है, यह जो कुछ करेगी, उसका फल बुरा नहीं होगा। इसको किसी बात पर भी तंग मत करना। स्वाभाविक ही यदि इसकी इच्छा हो, तो इसका विवाह कर देना, यदि इसकी इच्छा न हो तो मत करना। इसके सिर पर साधु-संगत की सेवा का भारी बोझ रहेगा । इसकी सुरत नाम से रसिक हो चुकी है, यह सुखी रहेगी ।"

फिर मेरे भाई के सिर पर हाथ फेरकर आपने उसे 'हरिदास' नाम प्रदान किया। कहने लगे, "हे सिख तुझे राज्य करना है

---

१. कबीर जऊ गृहु करहि त धरमु करू ।  (श्लोक कबीर)

और तेरी बहन योग धारण करेगी। तेरे राज्य में उसका योग चलेगा, उसके योग को तेरा राज्य आश्रय देगा। यों दोनों राजयोग कमाकर ज्ञान पद में पहुंचकर खेलोगे।" क्या बताऊं? इस तरह के असीम दान प्रदान करते हुए, बादल की भांति बरसते हुए प्यारे जी किसी और ठिकाने को चल दिये। हम शान्ति तथा प्यार भरी उदासी में पड़ गये। पर नित्य का सत्संग, सवेरे की वेला में 'आसा दी वार' का कीर्तन, सायंकाल 'सोदर' का कीर्तन और आरती आदि सच्चे आमोद-प्रमोद हमारे साथ थे। पिता जी राज्य का कार्य किया करते थे और मैं संगत की सेवा किया करती थी। इस तरह जब भाई ने राज्याधिकार संभाला तो गुरू जी का वचन सफल हुआ। इसी तरह मेरी पचास वर्ष की आयु - जो मुझे प्रारम्भ से प्राप्त हुई थी - व्यतीत हुई।

हां, पथिक ! यहाँ पर एक अनजान गरीब सिख पथिक वाणी का पाठ कर रहा था, जो अकेला था और जिसे कोई भी नहीं जानता था, जो मूर्ख तथा खुरदरे हाथों द्वारा घायल किया गया और दो आंखों के सिवा किसी और के अश्रु गिरे बिना दाह किया गया। वह गुप्त ही आया और गुप्त ही चला गया, पर वह गुरू नानक देव जी के कण वाला अपनी गुप्त यात्रा में एक ऐसा वाक्य कह गया कि जिस दिन श्री गुरू नानक देव जी हमारे परगने से चले थे, पर परगने की सीमा तक जो सिख आपको विदा करने के लिए आये थे, उनकी संख्या कोई नौ सौ से अधिक थी। एक सिख का जीवन अपनी 'मूक आवाज़' से हज़ारों का उद्धार करने का कारण बना। वह प्यारी आत्मा यहां बैठी थी, पर उसके रक्त की एक-एक बूंद के बदले यहां पर एक-एक सिख पैदा हुआ। हे पथिक ! क्या तू सिख है ? सिख तथा सिख मत क्या होता है ? और गुरू नानक जी के उस सुख सन्देश का, जो उसने देकर 'हानि-पक्ष' मे से निकालकर 'लाभी पक्ष' में लोगों को डाल दिया, आवाज़ सुन और सीख और फिर संसार को

बता और देरव कि एक सिरव में कितना सामर्थ्य होता है। देरव कि कैसे एक सिरव सवा लारव के तुल्य हो जाता है। हानि को कैसे लाभी में बदला जा सकता है ?

यह कुछ कहने के पश्चात् वह सूरत चुप हो गई, मेरी ओर से दृष्टि हटाकर आकाश की ओर देरवा, फिर मेरी ओर देरवा और कहने लगी :-

**मनहु न नामु विसारि अहिनिसि धिआईऐ ।।**
**जिऊ राखहि किरपा धारि तिवै सुखु पाईऐ ।।१।।**
**मैं अंधुले हरि नामु लकुटी टोहणी ।।**
**रहऊ साहिब की टेक न मोहै मोहणी ।।१।।रहाउ।।**

*(सूही महला १)*

इसे अति प्यार सहित गाती हुई मुझ पर प्रसन्न हो-होकर दृष्टि डालती हुई, फिर ऊपर चढ़ती-चढ़ती आकाश में एक किरण की भांति चमकती हुई, दूर होती, मन्द पड़ती हुई अन्त में रवो गई। मुझे निन्द्रा में उसके रवो जाने का दु:रव हुआ और चित कुछ अधीर हुआ। उस अधीरता में निन्द्रा खुल गई। एक मैं थी और एक वह मठ था। एकान्त तथा शान्ति थी, पर एक सुगन्धि तथा रस फुहार वहां पर भरी हुई लगती थी, जिसका छिड़काव मेरे रोमों से छूकर अन्दर को रवींचता था और अंन्दर से कोई सरसराहट-सी होकर रोमों का रोमांचित करती थी। 'वाह! वहा! सतगुरू नानक तेरा विरद्, पतित पावन'! वाह ! कैसे उद्धार किया और कैसे मुझे भूल के गोदी में खेलने वाले बालक को अपने अगम्य देश की झलक दिरवाकर सच्ची सूझ प्रदान की है।"

यह प्रसंग, यह वार्ता, बड़ी अद्भुत है। सतगुरू जी के इस जैसे तारने वाले विरद के अनेकों कौतुक हुए, जो शोक है कि लिरवे नहीं गए। लिखित में तो बहुत ही कम आये थे। हां, कौन समय के चिट्ठे रवोले और उनका वाचन करे। मुझे यह वार्ता

सुन्दर दिखाई पड़ी है, आश्चर्य वाली है, शिक्षा-भरी है, उद्धार करने वाली है। मुझ पर इसका उपकार हुआ है।

**प्रभ की उसतति करहु सन्त मीत ॥**
**सावधान एकागर चीत ॥**

*(गउड़ी महला ५)*

का उपदेश मेरे हृदय पर लिखा गया है। ऐसे ही यह वार्ता औरों के लिये सुखदाई हो सकती है, इसलिये मैंने सवेरे ही स्वप्न को स्मरण करके निरख-परखकर याद किया और स्मृतियें लिख लीं, कि किसी तरह किसी लिखित में आकर किसी सौभाग्य लिखित द्वारा गुरू यश के चातक नैनों तथा पपीहा रूपी कानों तक पहुंचती हुई हृदयों में अमृत की शीतलता प्रदान करे।

यों यह 'भोले भाइि मिले रघुराइिआ' का सतगुरू जी का कौतुक प्राप्त होकर लिखित में आया ।